महारामायण

सातवां अनुभव खण्ड (उत्तरार्द्ध)

(महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज कृत)

—:o:—

सम्पादक—

नन्दू भाई

निज़ामाबाद (दक्षिण)

—:o:—

अ० स० सम्पादक—

देवीचरन मीतल

लेखराजनगर, अलीगढ़

—※—

प्रकाशक—

नन्दू भाई प्रधान

शिव साहित्य प्रकाशन मंडल,

पो० दयाल नगर, अलीगढ़

द्वितीय संस्करण सं० शाका १८८५	सर्वाधिकार सुरक्षित	मूल्य १) प्रति

विषय सूची—सातवां अनुभव खंड (उत्तरार्द्ध)

प्रथम भाग

क्रम संख्या		विषय	पृष्ठ संख्या
पहिला	समुल्लास	भरत हनुमान	५६१
दूसरा	,,	भरत मिलाप	५६६
तीसरा	,,	राम राज तिलक	६०३
चौथा	,,	राम का राज	६०८
पाँचवाँ	,,	रीछ राक्षस और बन्दरों की विदाई	६१०

द्वितीय भाग

पहिला	समुल्लास	निर्गुण-सगुण	६१३
दूसरा	,,	अवतार विषय (दूसरी बार)	६१६
तीसरा	,,	सच्चिदानंद की समझ अवतार विषत मे	६२१
चौथा	,,	तीन या (चार) युगों के अवतार	६२४
पांचवाँ	,,	अवतारों के विषय में क्यों का प्रश्न	६२७
छटा	,,	क्यों ? लगातार त्रेता के अवतार	६३०
सातवाँ	,,	क्यों ? लगातार द्वापर के अवतार	६३३
आठवां	,,	क्यों ? लगातार कलियुग का अवतार	६३५
नवाँ	,,	युगों का धर्म और नाम की महिमा	६३८
दसवाँ	,,	शंका समाधान	६४५
ग्यारहवां	,,	नाम	६४६
बारहवां	,,	नाम लेने की विधि	६५२
तेरहवां	,,	नाम लेने की विधि लगातार	६५७
चौदहवाँ	,,	बालमीकि की कथा	६६१
पन्द्रहवां	,,	भुशुंडी का गरुड़ को राम नाम की दीक्षा देना	६६७
सोलहवाँ	,,	अन्तिम व्याख्यान	६७०

ओ३म् सत्यम्

महारामायण

सातवाँ अनुभव खण्ड

उत्तरार्ध प्रारम्भ

ओ३म् सत्यम्

प्रथम भाग

पहिला समुल्लास

भरत हनुमान

बन्दी ग्राम एक गाँव है, जो अयोध्या से उस ओर बसा हुआ है। भरत जी ने यहां फूँस का झोंपड़ा डाल रक्खा था। उसके बीच में सिंहासन था। सिंहासन पर राम का खड़ाऊँ रक्खा था। भरत जी उसके नीचे बैठकर राजकाज का प्रबन्ध मंत्रियों द्वारा कराया करते थे। सिर पर जटाजूट धारण कर रक्खा था। गले में साधारण वल्कल वस्त्र पड़े रहते थे। जब से राम वन गये, भरत और शत्रुहन दोनों भाइयों ने तपस्वियों का रूप बना रक्खा था। फल फूल, कन्द मूल का सूक्ष्म आहार

था। काम करते थे। काम में आलसी नहीं थे लेकिन वह काम इस विचार से किया कराया जाता था कि राम की सेवा है।

इस प्रकार तपस्वियों जैसा जीवन व्यतीत करते हुये भरत राम के लौटने के दिन गिना करते थे। भरत राजा थे, साधू थे या तपस्वी थे, इसका बिचार उनके चरित्रों के जानने वाले कर सकते हैं।

चौदह वर्ष की अवधि का अन्त हो गया। केवल एक दिन और रह गया। एकान्त में बैठे हुये भरत जी मन ही मन सोचने लगे—"राम अब तक नहीं आये। न मेरी सुधि ली। मैं महा अपराधी हूँ। उनके दुखों का कारण मैं ही हूँ, लेकिन राम इतना तो जान गए हैं कि मैं निर्दोष हूं। फिर वह मुझे भूल क्यों गए? लक्ष्मण बड़े भाग्यवान हैं जो रात दिन राम की सेवा में लगे रहते हैं। विधाता ने मुझ से राम की सेवा का सौभाग्य भी छीन लिया। फिर भी मुझे दृढ़ विश्वास है कि राम का कोमल हृदय मेरी त्रुटियों पर दृष्टि नहीं डालता। वह बड़े हैं उनमें बड़ाई है।

जो छोटे छुटाई नहीं छोड़ते। बड़े भी बड़ाई नहीं छोड़ते॥

ऐसा प्रतीत हो रहा है कि राम आ ही रहे होंगे। मेरा मन आप ही साक्षी दे रहा है। दाहिना अङ्ग फड़क रहा है। राम कल तक न आए और मैं फिर भी जीता रहा तो मेरे समान इस संसार में कोई अधम पापी न होगा।"

कुटी में फूँस के आसन पर बैठे हुए वह अपने विचार में मग्न थे। चित्त विस्माधित बन गया था। आंखें बन्द थीं। अकेले थे। कोई उनके पास नहीं था। कर्मचारी केवल समय समय पर आते थे। अक्समात् आँख खुल गई। देखते क्या हैं कि हनुमान चले आ रहे हैं। पहिचाना नहीं है।

हनुमान बोले—"तुम जिसके नाम का सुमरन रात दिन करते हो और जिसकी मूर्ति निरन्तर तुम्हारे ध्यान में बसी रहती है वह रघुकुल तिलक सूर्य वंश का दिव्य मणि रण में रावण को मार कर और राक्षस कुल का नाश करके तुम से मिलने के लिए आ रहा है और ब्रह्माण्ड में उसकी विजय कीर्ति की बधाई बज रही है।"

भरत जी ने पूछा—"प्यारे भाई! तुम कौन हो जो शुभ और मङ्गल का समाचार सुनाने आए हो।"

उत्तर दिया—"मैं मारुत सुत (वायु के समान दौड़ने वाला) हनुमान हूँ। मेरा यही नाम है और मैं राम का सबसे छोटा सेवक हूं।"

भरत उठे। हनुमान झपट कर इनके चरणों में गिरे। इन्होंने झपट कर उठा लिया और अपनी छाती से लगा लिया। प्रेम की धार हृदय से उमड़ी। आंखों में आई। आंसू भर आए। "तू आज क्या मिला मुझको राम मिल गये? तू राम का दूत नहीं है राम का रूप है। बता राम कैसे हैं! और सीता, लक्ष्मण की क्या दशा है?"

हनुमान--"सब कुशल क्षेम से हैं।"

भरत--"क्या राम को कभी मेरा ध्यान आता था? मैं भी तेरे समान राम का दास हूँ।"

हनुमान--"तुम राम के प्राण प्यारे ही नहीं हो, तुम उन के प्राण हो। रातदिन तुम्हारी चर्चा करते रहते थे और तुमको अपना निज स्वरूप समझते हैं।"

भरत के आनन्द की कोई सीमा नहीं रही। बार बार हनुमान को देखा और बार बार उन्हें छाती से लगाया।

हनुमान ने राम के पास जाने की आज्ञा मांगी। यह तो

इधर प्रयाग राज की ओर उड़े इधर भरत ने अयोध्या में आकर सबसे पहिले वशिष्ट को राम के आने का समाचार सुनाया। फिर राज भवन में जाकर माताओं को सूचित किया। धीरे धीरे नगर वालों ने सुना। सुख का समुद्र सब के हृदय में उमड़ने लगा। कोई अपने आपे में नहीं रहा। जो जहां बैठा था वहीं से राम के दर्शन के चौड़े राज पथ पर आ निकला। बूढ़े और छोटे बच्चों के साथ लाने और साथ लेने का ध्यान किसी को नहीं रहा। जो आते जाते हुये मिलते हैं उनसे प्रश्न किया जाता है क्या तुमने राम को देखा है? अब वह अयोध्या से कितनी दूर हैं? कब आयेंगे?

किसी को उस समय राम के अतिरिक्त और किसी बात का ध्यान नहीं था। खाने पीने, काम काज, घर बार, त्यौहार व्यौपार सब की सुध जाती रही।

राम आगये! कहां हैं! किधर हैं! हम उनको चल कर देखें! चौदह बरस हुए जब वह घर से तपस्वी बन कर निकले थे। एक युग बीत गया। जीने वाले जिए, मरने वाले मरे। जीने वाले मौत को भूल गए। मरने वाले जीवन को भूले। किसी को नहीं भूले तो राम नहीं भूले थे। राम सर्व प्रिय थे। राम का नाम सर्व प्रिय नाम था।

गये हैं बन को कभी लौट-कर वह आयेंगे।
हम उनको देखेंगे और आप को दिखायेंगे॥
हैं राम सबके सहायक, हैं राम सर्व प्रिय।
वह आयें आंखों पर अपने उन्हें बैठायेंगे॥
अयोध्या सूनी थी, सूना बना था कौशल देश।
वह आये आयें उन्हें बीती सब सुनायेंगे॥
तुम्हारे जाने के पीछे दुखी हुये सब लोग।

यह दुख था क्या, दशा देश की जतायेंगे ॥
अयोध्या बन हुई जब से गये हैं राम को बन ।
हमारी बिगड़ी को राम आनकर बनायेंगे ।
बसेगी उजड़ी हुई बस्ती, लोग होंगे सुखी ।
न उनको छोड़ेंगे हम रूँठे को मनायेंगे ॥
कहां हैं राम ! कहाँ लक्ष्मण ! कहां सीता ! ।
दिखादो चल के हमें उनको साथ लायेंगे ॥

सब में इस प्रकार की गपशप होने लगी !

नगर की स्त्रियां दौड़ीं । अक्षत, दूब, हल्दी, केसर, रोरी, तुलसी के पत्ते थालों में सजाए । "राम को टीका लगायेंगे ।" बहुतों के सिरों पर पानी से भरे हुए कलश थे । "राम आरहे हैं । भरे घड़े का सगुन दिखायेंगी ।" यह उस समय का सत्कार त्यौहार था । बहुत स्त्रियाँ आर्ती सजा कर अपने अपने दरवाजों पर जमकर खड़ी हो गईं । "हम राम की आरती उतारेंगी ।" इन्होंने राम को क्या समझा हुआ था ।

अपना अपना भाव ! अपना अपना इष्ट ! अपनी अपनी दृष्टि ! अपने अपने मन की सृष्टि !!

किसी की दृष्टि में थे राम मालिक ।
कोई जानती थी उन्हें देश पालक ॥
अयोध्या का राजा कोई मानती थी ।
कोई ब्रह्म का रूप पहिचानती थी ॥
किसी बच्चे वाली ने समझा था बच्चा ।
कोई कहती है जानकी का वह दुल्हा ॥

सारे नगर में धूम मच गई । राम आए, लक्ष्मण आए, सीता आई और एक भी प्राणी ऐसा नहीं होगा जो उस समय राम के प्रेम में निमग्न न हुआ होगा ।

सूखी नहर में पानी आया, सूखे पौधे हरे हुए।
धान के खेत पड़े थे पीले, पानी पीकर भरे हुए॥
निर्धन को धन मिला, राम का नाम जो उसने सुन पाया।
राम नाम क्या विचित्र धन है, धन पाया शुभ गुण पाया॥
राम नाम की रटन लगी, राम राम सब कहने लगे।
राम प्रेम के गङ्गा घाट पर, तीर तीर कर बहने लगे॥
आये राम अरु आने से उनके, मङ्गल चहूँ दिश छाया॥
मिला या ना मिला किसी को, सबने समझा भर पाया॥
राम थे बन में वन बासी, और राम थे जोग जगत बासी।
राम अयोध्या बासी सगे, मन बासी और तन बासी॥

भरत सबसे अधिक फूले हुये तन में नहीं समात थे।

दूसरा समुल्लास

"भरत मिलाप"

हनुमान गये और आये। झकोले के समान गए और आंधी के समान आए। राम को भरत की कुशल पहुँचाई।

नाम तुम्हारा होंट पर, मन में तुम्हरा ध्यान।
नन्दीग्राम में देह है, निकट तुम्हारे प्रान॥
दरस परस की लालसा, आङ्ग खुली दिन रैन।
ना तुम मिलौ न मैं सुखी, कैसे पाऊँ चैन॥
अंखियाँ यकटक घूम रहीं, इत उत चारों ओर।
अजहुँ राम आए नहीं, नहीं ठिकाना ठौर॥
बिरह अग्नि सुलगत रही, निसदिन बारह मास।
हड्डी हड्डी रह गई, जल गए पिंजर माँस॥

राम उठे। विमान पर चढ़े। वह सबको ले उड़ा। नन्दी-ग्राम में पहुँचा! भरत वहाँ नहीं थे। वायु रथ अयोध्या पहुँचा। सबकी दृष्टि आकाश की तरफ थी। रथ दिखाई दिया। धूम मच गई। राम आए! राम आए!! राम आए!!! राम का नाम आगे पीछे दायें बायें ऊपर नीचे गूँज उठा।

राम आए राम आए आगए।
धन्य जिनको राम का दर्शन मिले॥

कर्म, ज्ञान, अन्तःकरण के पार में।
चौदह इन्द्री में नहीं वह बार में।

आरहे हैं नभ से और लो आगए।
धन्य हैं जो उनका दर्शन पा गए॥

सब राम का रास्ता देख रहे थे। ऊँची दृष्टि नीचे पड़ी। पृथ्वी पर सब लोग राम राम कहते हुए खड़े थे। राम स्वर्ग से आए पृथ्वी पर आकर ठहरे। सूरज वँशी सूरज अँशी थे। सूरज ऊपर रहता है। राम का कुल सबसे ऊँचा है। 'ओ३म, भूर, भुवः, स्वः तत् सवितुर वरेण्यम् भर्गो देवस्य धी महि, धियो योन, प्रचोदयात्।'

वायु रथ नीचे उतरा जहां भरत खड़े थे। राम सतोगुणी माता के और भरत तमोगुणी माता के लड़के थे। प्रकाश छाया पर पड़ता है। राम उतरे। भरत झपटे। पांव पर गिरे। राम ने झपट कर उठाया। छाती से लगाया। लाखों की भीड़ थी। और सब राम का मुंह देखने आये थे। अंग से मिलने के इच्छुक चाहे न रहे हों लेकिन उस भीड़ में कोई स्त्री पुरुष ऐसा नहीं था जिसे राम के रूप देखने की लालसा न रही हो। लड़के पूछते थे राम कहाँ हैं। हम भी देखें! बूढ़े बोलते थे कि राम को बचपन में देखा था अब वह पुरुष हो गये। कैसे हैं!

स्त्रियां तो राम और सीता के नाम पर उधार खाकर आई थीं। वह मनोहर जोड़ी कैसी होगी! हम भी तो उसके दर्शन का लाभ उठायें!

राम गुरु और माताओं के पांवों पड़े। आशीर्वाद लिया। मन्त्रियों से मिले। औरों से अब कैसे मिलते! राम लंका जाकर सिद्ध हो आए थे। वह पहिले भी सिद्ध रहे होंगे। लंका जाने से उनकी सिद्धि में सन्देह नहीं रहा। रावण मरते मरते उन्हें बहुत सी बातें सिखा गया था। नर रूप में आए थे। नर लीला दिखाते थे। सीखते थे सिखाते थे। रावण एक से अनेक बन गया था। रण भूमि लाखों और करोड़ों रावणों से भर गई थी। राम इस घटना को कैसे भूल सकते थे!

लाखों स्त्री पुरुष राम के दर्शन निमित्त आये थे। यह निराश कैसे जायें! राम ने वही रावण की लीला की। एक से लाखों हो गए। सबसे मिले। एक को भी नहीं छोड़ा और आश्चर्य यह था कि जिसने देखा एक ही राम को देखा। अनेक राम दृष्टि में नहीं आए। सबने जाना, 'राम मुझसे मिले औरों से नहीं मिले।" उसी भीड़ में यह झगड़ा मच गया। सबके मुँह में यही एक बात थी।

प्यार मन में था मेरे मुझसे मेरा प्यारा मिला।
जोति था आँखों का आखों जोति का तारा मिला॥
मैंने देखा राम को और राम ने देखा मुझे।
मेरा था मैं उसका था वह सार था सारा मिला॥
राम है रघुकुल तिलक सूरज का इसमें अंश है।
चमका दमका, आके चमकारा भी दमकारा मिला॥

भरत शत्रुहन दोनों राम से मिलकर रीछ बंदर और राक्षसों से मिले।

भरत मिलाप तत्व मिलाप था। "तत त्वम असि" वाच और लक्ष का दृश्य था।

सबसे मिला हुआ है वह ही हमारे मन में है।
मन में जो आके ठहरा वही ठहरा तन में है॥
सब में है सबका है वही रहता है सब जगह।
बस्ती, पहाड़, जंगल, ऊसर में बन में है॥
नौ तत्व में शरीर में नौ रस है राग में।
हीरा के रूप उसकी चमक नौ रतन में है॥
ज्ञानी का तत्व ज्ञान तो ध्यानी का ध्यान मान।
जोगी का जोग उन वह जोग और जतन में है॥
यम है नियम है प्राण है आसन में है वही।
सन्तों के है वचन में तो श्रवण मनन में है॥

राम बन्दर, रीछ और राक्षसों को साथ लिये हुए अपना नगर दिखाने चले। भोली भाली स्त्रियां आर्ती उतारने के निमित्त अपने दरवाजों पर खड़ी थीं। कहारियों ने सिर पर पानी का कलश धारण कर रक्खा था। राम उनके पास भी गए। वह मगन हो गईं। कहारियों को पारितोषक भी दिया। जिन्होंने देखा और पाया उन्होंने जाना। जिन्हें नहीं मिला वह क्या जानतीं। स्त्रियां कहती थीं-"राम मेरी ड्योढ़ी पर आए। मैंने आरती उतारी" पुरुष कहते थे—'चल बावली! तू पागल होगई! राम कब घरों घरों मारे मारे फिरने वाले हैं!' अयोध्या में बहुत दिनों तक यही चर्चा होती रही और हाथी के देखने वाले अंधों के समान सब इसी एक बात पर लड़ते झगड़ते रहे।

वह आया आया आया बाहर भीतर में वह आया।
फुदकता आया आंगन में यहां जब घर में वह आया॥
उसे आना था आया, रोकने वाला कहाँ कोई।

हमारे रोम में नस नाड़ी में भी सिर में वह आया ॥
चला उत्तर से जब, दक्षिण गया, अब आया उत्तर में।
यही अवतार बन कर देख लो तुम नर में वह आया॥
रमा रमता बना जोगी रमा है राम नाम उसका ।
यहां आया वहां आया पहाड़ ऊसर में वह आया ॥
चराचर में है व्यापक एक है और एक है निसिदिन ।
वही सूखे में आया जानो और अब तर में वह आया ।

राम ने नगर का चक्कर लगाया। भीड़ साथ है। साथियों को देखने योग्य सब जगहें दिखाईं। हंस हंस कर मजे मजे की बातें करते रहे। 'भाइयो! अयोध्या नगरी मुझे बहुत प्यारी है। इसका गुण इसके नाम में है। नाम की छानवीन में गुण का पता लगता है। इस नाम में दो धातु हैं -"अ" नहीं और युद्ध (लड़ाई) जिसमें लड़ाई न हो वह अयोध्या है और यह अयोध्या जिस देश की राजधानी है वह कौशल देश है। कौशल देश उसे कहते हैं जिसमें कुशल और शान्ति रहे और मैं राम हूँ जो इसमें रहने के लिए या रमण करने के लिए आया हूँ। इस अयोध्या में आने का मन्तव्य शान्ति, कुशल और अयुद्ध अवस्था में रहना है। यह ब्रह्माण्ड में नर पिण्ड, नर शरीर और नर देही है।

तुमने समझा होगा कि मैं लड़का हूँ और दक्षिण में युद्ध करने गया हुआ था। नहीं ऐसा नहीं है। रावण का रजोगुणी अहंकार बढ़ गया था। कुम्भकरण का तमोगुणी संस्कार अपनी सीमा को छोड़ गया था और विभीषण का सतोगुणी व्यवहार निबल पड़ गया था। मैंने राक्षसों की सतोगुणी, बन्दरों की रजोगुणी और रीछों की तमोगुणी सेना इकट्ठी की। इनको नियम बद्ध किया। इनसे यम कराया। रावण को धर दबाया। कुम्भकरण को मिट्टी में मिलाया। उनका जीवन अँश लेकर

अपने अंतः रख लिया। तुम इसे युद्ध समझो। अयोध्या का राजकुमार दशरथ सुत लड़ने भिड़ने नहीं गया था। उत्तर (मस्तिष्क) से उतर कर दक्षिण (संस्कृत दक्ष) ऋद्धि, सिद्धि प्राप्त करने और अपने रमण संस्कार को उभारने गया था। उत्तर क्या है ? उत (ऊपर) तर (तरना) है। मैं उतरा खण्ड से दक्षिण खण्ड में इस अभिप्राय से गया हुआ था।

विभीषण, जामवन्त, हनुमान, सुग्रीव, अङ्गद और नलनील की ज्ञान दृष्टि खुल गई ! प्रणाम किया।

राम रमता जोगी ठहरे आए रमता राम हो।
तत्व की शोभा दिखाई सबको सोभा धाम हो॥
रमने आया रमता जोगी रम गया और रम रहा।
वह नहीं आया हुआ था मोह मद और काम हो॥
ब्रह्म का अवतार था अवतार था अवतार था।
उतरा उत्तर खण्ड से दक्षिण गया विश्राम हो॥
राम को कहना नहीं नर, राम नारायण हैं आप।
रूप दिखलाया सभी को, भेद दण्ड और साम हो॥
गुरु की सङ्गति हो तो प्राणी, समझे राम का पूरा रहस्य।
गुरु की सङ्गति रात दिन हो, और आठों याम हो॥

अयोध्या नगर की परिक्रमा करके राम गुरु वशिष्ठ के घर गए। विभीषण के हाथ से लंका के रत्न भेंट कराये। रीछ और बन्दरों ने फल फूल पत्ते उनके आगे धरे। फिर यह कैकई माता के राजभवन में गये। वह कुछ लजाई और सहमी हुई थी। चारों भाई, सीता और रीछ बन्दर उसके पावों पर गिरे। राम ने अपने साथियों से कहा—"यह मेरी सच्ची माता है। इसने माता की मानता से मुझे चौदह बरस (की अवधि) में पांच कर्म इन्द्रियों, पाँच ज्ञानेन्द्रियों और चार अन्तःकरण के बस में लाने का अवसर दिया। यह न होती तो यह काम

कदापि न होता। यह स्वार्थी नहीं है परमार्थी है। स्वार्थी होती तो सदा के लिये भरत को राज दिलाती। इसे मेरी भलाई का ध्यान भरत की भलाई से भी अधिक है। यही कारण है कि मैं इसे अपनी सच्ची माता कहता हूँ।"

राम उनके और साथी फिर कैकई के चरणों में गिरे। इस बार उससे न रहा गया। राम को उठा कर छाती से लगाया। माथा और सिर चूमा और आंसुओं के मोती उनके सिर पर न्यौछावर किये गये।

फिर राम सुमित्रा रानी के भवन में आए। दण्ड प्रणाम किया। साथियों से बोले—"यह मेरी दूसरी माता है जिसने अपने कलेजे का एक रत्न लक्ष्मण (लक्ष– आदर्श और मण– मन) मुझे दिया। मन का आदर्श यह मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है और इसी माता ने अपने हृदय के दूसरे रत्न शत्रुहन (शत्रु-बैरी और हन-मारने वाला) मेरे भाई भरत को देकर अभय कर दिया। यह प्रशंसा, मित्रता और उदासीनता की प्रतिमा है। इससे बढ़कर कौन हो सकता है! यह जीवन मुक्त है।"

सबने उसे प्रणाम किया और उसने राम को अंग लगा कर आशीर्वाद दिया।

अन्त में राम कौशिल्या के महल में आये। उसने उन्हें पावों पड़ने का समय नहीं दिया। झपट कर गोद में भर लिया। उसकी दृष्टि में राम बच्चा प्रतीत हुए। उसने कहा, "राम! तू शरीर का इतना सुकुमार और कोमल है कैसे रावण जैसे बली शत्रु को मार सका!" राम हंसे और साथियों से मुस्करा कर कहा—'यह मेरी पहिली माता है कौशिल्या कहलाती है। और कौशल देश की कुशल देवी है। और इतनी भोली भाली है कि मुझे अबतक नन्हा बालक समझ रही है। तुम इससे

पूछो,—कुशल कौशिल्या के चरणों में है या और जगह है? इसीके अंग की कुशलता का मुझे भाग मिला। इसीने मुझे कुशल बनाया और इसीके पुन्य प्रताप से मैं जीता जागता और कुशल हूं। और यह भोलेपन से पूछ रही है कि तुम कैसे कुशल पूर्वक रावण के हाथ से बच कर आये!" राम की इस बात पर सब खिलखिला कर हँस पड़े। कौशिल्या ने उन्हें चूमा चाटा जैसे गाय अपने छोटे बछड़े को चूमती चाटती है।

इधर गई, उधर गई। खाने पीने के पकवान लाई। राम ने सबको बिठाया। सबने मिलकर खाया पिया।

रीछ बन्दर और राक्षस कहने लगे—"धन्य है राम की माता! राम इसी की कोख के दिव्य और मूल्य रत्न हैं। ऐसे ही पवित्र खान से बहुमूल्य रत्न पुत्र के रूप में निकलते हैं।"

तीसरा समुल्लास

राम राजतिलक

दशरथ तरसते रह गये। न राम को युवराज बना सके न तिलक कर सके। अयोध्या बासियों की इच्छा मन ही मन में रह गई। पूरी न होसकी। त्रिया हट की प्रबलता ने इन सब को पीछे ढकेल दिया। हट तीन प्रकार की होती है। राज हट, बाल हट और त्रिया हट। त्रियाहट इन सबमें अधिक बलवान है। राम को चौदह बरस के लिये बन को जाना पड़ा। दशरथ ने इसी दुख में अपना प्राण त्याग दिया और पुरवासी देखते के देखते रह गये।

सबसे बलवान देव माया।
सब पर रहती है उसकी छाया॥

होता है वही जो दैव चाहे।
है सब में बली वही बना है॥
पत्ते पत्ते का होके प्रेरक।
करता रहता है अपना कौतुक॥
जो चाहे करे करावे दाता।
करता धरता है वह विधाता॥
बे उसके कहीं भी कुछ हुआ है।
पत्ता भी नहीं कभी हिला है।

आज चौदह बरस की अवधि पूरी हो गई। राम कौशिल्या के भवन में थे। वशिष्ठ, वामदेव, सुमन्त आदि मन्त्री पहुँचे। कहने लगे"- आज शुभ घड़ी शुभ दिन, शुभ मुहूर्त्त है। आज ही राम का राज तिलक होना चाहिए।"

कौशिल्या ने कहा- "ऐसा ही करो।"

वशिष्ट बोले—"राम स्नान करें। नये वस्त्राभूषण धारण करें।"

राम ने कहा—"पहिले मेरे साथियों को न्हिलाओ, धुलाओ, वस्त्राभूषण पहिनाओ। इन्हीं की सहायता से मैंने शत्रु पर विजय पाई है। यह मुझे लक्ष्मण, भरत शत्रुहन से भी अधिक प्यारे हैं।"

फिर राम ने अपने हाथ से भरत और शत्रुहन की जटायें खोलीं। यह दोनों भी जटाधारी बने हुए थे। इन्हें न्हिलाया और देह में उबटन, तेल फुलेल लगाया। नये वस्त्राभूषणों से सुशोभित किये गए।

सीता को भवन के भीतर स्त्रियों ने न्हिलाया, धुलाया, संवास, सिंगारा। भूषण वस्त्र पहिनाए। नाइन ने पांवों में महावर लगाया। सबके पीछे राम न्हाये और राज वस्त्र और राजमुकुट धारण किए सुनहले सिंहासन पर आकर विराजमान

हुए। राम लक्ष्मण की जटायें बहुत बढ़ गई थीं। नाई ने उन्हें हाथ नहीं लगाया। धो धुला कर मैल निकालने के पीछे बीच से मांग निकाल दी थी। बाल कटवाने का फैशन नहीं था और खुले हुए बालों के सिर पर मणिजड़ित मुकट रक्खा गया। सीता उनके बायें तरफ सिहासन पर बैठी। स्त्री और पुरुष दोनों ही राज के भागीदार समझे जाते थे और जबतक स्त्री पुरुष के बाम अंग में आसन आरूढ़ न हो जाए तब तक कोई शुभ काम नहीं किया जाता था।

सीता और राम सिंहासन पर बैठे। ब्राह्मण वेद और भाट कवित्त पढ़ने लगे। नाचने गाने वाली स्त्रियां आई। नाचा, गाया। स्त्रियों ने मंगल राग गाया।

सबसे पहिले विधि अनुसार वशिष्ठ ने राम को तिलक लगाया। यह राजगुरु थे। फिर और ब्राह्मणों ने अपनी अपनी बारी पर टीका किया। राम ने राज कोष खोल दिया। सबको इतना दान दक्षिणा दिया कि वह धनी हो गए और यह भी उस महा उत्सव के आनन्द में इतने उन्मत्त और मगन होगए कि यह भी अपने मिले मांगे धन का बटवारा करने लगे।

राम का दान, महा कल्याण।
राम का दान, महा सन्मान॥
राम दान की महिमा भारी।
राम दान के सभी भिकारी॥
राम सिंहासन आन बिराजे।
सोभा मङ्गल अद्भुत साजे॥
दिया दान धन सम्पति पाई।
अब दरिद्र दुख निकट न आई॥

राम ने सिहासन पर बैठकर रीछ, बन्दर और राक्षसों को भी भेंट दान से सन्मानित किया। सबने लेकर सिर पर चढ़ाया।

गाने, बजाने वाली उद्यमी स्त्रियों को इतना धन मिला कि वह अयाच्य हो गईं।

इसी मंगल उत्सव के अवसर पर ब्रह्मा जी वेदों को हाथ में लिए हुए आए। वेद भेंट में दिए। अब तक वेदों के चार विभाग नहीं हुए थे। हाँ! उनमें पुरुष सूक्त, देवी सूक्त आदि प्रसंग प्रथक प्रथक थे, जिनसे शैव शाक्तिक आदि अपने मत विचार के प्रमाण निकाला करते और अपने अपने पक्ष की पुष्टि की सामिग्री ढूंढ़ते रहते थे।

ब्रह्मा ने राम राम की स्तुति गाई—

राम शोभा धाम तुम हो, राम तुम पूरन धनी।
राम मंगल रूप तुम हो, ज्ञान ध्यान के सुखमनी॥
ज्ञान हो अनुमान हो, प्रमाण अनुभव खान तुम।
अर्थ कर्म और मोक्ष हो, जीव के कल्याण तुम॥
तुम तो हो आधार जग के, धार है संसार यह।
तत्व सबके तुम हो तत्व, सार का है सार यह॥
तुम अगुण हो तुम सगुण, गुण सगुण के तुम परे।
मायाधारी तुम हो और रहते हो माया से वरे॥
भेद क्या जाने कोई, बानी की तुम में गम नहीं।
मन नहीं तुम तक पहुंचता, तुम में दम और श्रम नहीं॥
'हां' 'नहीं' के बीच में, कुछ कुछ पता पाते हैं हम।
नेति नेति ऐति ऐति, कहके समझाते हैं हम॥
ज्ञान की दृष्टि हो तब, समझे कोई इस भेद को।
जब नहीं अनुभव तो समझे, कौन ज्ञान के वेद को॥

राम मुस्कराए। ब्रह्मा को कमल के चार फूल दिए और वह प्रणाम करके ब्रह्मधाम को गए।

देवता आए, देवियां आईं। उत्सव मनाया। राग गाया।

सरस्वती देवी की स्तुति विचार से भरी हुई थी।

रमे हुये रम रहे जगत् में, जग के रमता राम बने।
रमता जोगी नाम तुम्हारा, राम हो तुम अभिराम बने॥
चाहे करो कराओ सोई, खेल खिलाने आये हो।
सोभाधारी, लीला न्यारी, लीला दिखाने आये हो॥
नाम रूप तो सब हैं तुम्हारे, नाम रूप में प्रकट हो तुम।
घट घट बासी सर्व प्रकाशी, शोभा के समधाम हो तुम॥
सब के अन्तर रह के निरन्तर, सबकी जान के तुमहो जान।
साँस साँस में व्यापक होकर, सबके प्रान के तुम हो प्रान॥ ४
अपना काम बनाते हो, हम सबको आके लजाते हो।
राम राम तुम राम रमे हो, रमे हो जग को रमाते हो॥ ५

राम सरस्वती का राग सुनकर खिलखिला कर हँसे। एक सुन्दर बीन रक्खा हुआ था। उठाया। उसे दिया। उसने ले लिया और नमस्कार कर चली गई।

अन्त में शिवजी आये। डमरू बजाते, त्रिशूल नचाते, हाथ में खोपड़ी का प्याला लिये हुए, गले में खोपड़ियों की माला डाले हुए, अगड़म, अगड़यम करते हुए, उन्होंने भी स्तुति गाई:—

राम राम तुम राम राम हो, राम रामहो तुम बाबा।
सोभा रूपी सोभा भूपी, सोभा धामहो तुम बाबा॥
तुम प्रकाश अविनाशी पूरे, घट औघट में बसते हो।
मैं तो छाया रूप तुम्हारा, मेरे विश्रामहो तुम बाबा॥
मेरा नाम काल क्यों रक्खा, महाकाल विकराल हो तुम।
काल है रूप है तुम्हरा बाबा, काल नाम हो तुम बाबा॥
जगत चराचर में हो रमाते, रमाते विचरते कभी नहीं।
भेद कोई क्या समझे तुम्हरा, अगम अनाम हो तुम बाबा॥

नमो नमो हां नमोनमो, हां नमोनमो हां नमोनमो।
अर्थ धर्म और मोक्ष राम तुम, सतके काम हो तुमबाबा॥

राम ने रुद्राक्ष (रुद्र की आँख) की माला उठाई। सन्मान और आदर के साथ भेंट दिया। "राम! तुमने पहिले सीता के स्वयम्बर में मेरा धनुष तोड़ा। मेरे शिष्य परशराम का बल छीन लिया। क्या अब मेरी मुन्ड माला भी छीनना चाहते हो जो यह आंखों की माला दे रहे हो?" राम मुस्कराये। "नहीं महाराज नहीं! मुन्ड माला गले में पड़ी रहे। यह आंख की माला आँख में रहे। यह रुद्राक्ष (तुम्हारी ही रुद्र की) आंख है। तुम्हारी वस्तु तुमको भेंट दी गई।

शिवजी हँसे। चाहते हो मेरी आंखों में बसो।

आंख के तल पट में छुप कर तुम रहो॥
आँख में तुम मुन्ड में रहते हो तुम।
हृदय में तुम और क्या कहते हो तुम॥
ऐड़ी चोटी तक में व्यापक राम हो।
राम ही में मेरा सुख विश्राम हो॥

रुद्राक्ष की माला ली। नमस्कार किया और शिवजी चलते बने।

चौथा समुल्लास

राम का राज

सूरज निकला। जागृत अवस्था आई। कमलके फूल खिले। सूरज का मुँह देखने लगे। सूरज मुखी फूल सूरज के दर्शन में लगा। जिधर जिधर सूरज का रथ जाता है उधर उधर उसके रूप की ओर इसकी दृष्टि रहती है। जीवन की धार की वर्षा होने लगी। रात के जाते ही सब में नई जान आगई।

राम राजा हुए। प्रजा सुखी होगई। देश बसा। उजड़ी नगरी नर नारियों से भर गई। दुख गया। सुख आ गया। न कोई किसी को सताता है न कोई किसी के पीछे पड़ता है। सब रात दिन अपने काम धन्धे में लगे रहते हैं। सिंह और बकरी एक ही घाट में पानी पीते हैं। धर्म का राज है, धर्मराज की बधाई बजती है। बेटे, बेटी मां की सेवा सत्कार करते हैं। स्त्रियों ने पुरुषों के आधीन रह कर अपने घरों को स्वर्गधाम बना रक्खा है। अड़ौसी पड़ौसी शान्ति और आनन्दसे रहतेहैं।

क्यों ? क्योंकि स्वराज और सुराज है। राजा का आचरण धर्म का आदर्श है। रानी का व्यवहार हंसी आनन्द और मंगल का कारबार है। राम और सीता दोनों ही आदर्श स्त्री पुरुष हैं। यथा राजा तथा प्रजा !

जहाँ ऐसा राज और ऐसा राजा हो वहां सुख सम्पति क्यों न इकट्ठे हों। दान धर्म, मेल मिलाप, प्रेम प्रीति का स्वाभाविक प्रचार था। व्याख्यान और उपदेश कौन किसे दे और क्यों दे ! राम सूरज वंश के तिलक थे। जब सूरज आप चमक उठा तो प्रकाश के निमित्त दीपक कौन जलाये !

जहां धर्म का आचरण होता है वहां प्रकृति माता आप सहायक बनकर वृद्धि और उन्नति का मार्ग दिखाने लग जाती है।

यह राम राज की महिमा थी।

समय पर पानी बरसता था। खेती हरी भरी रहती थी। खाने पीने के नाज अधिकता के साथ उत्पन्न होते थे। वृक्ष फूलते फलते और फलों से लदे रहते थे। जगह जगह संतों का सत्संग हुआ करता था।

कोई किसी की निन्दा नहीं करता था। राम का नाम सबके होटों पर और राम का ध्यान सबके हृदयों में रहता था। बन

वासी बन से आगया। सबकी बिगड़ी आप ही बन गई। यह सुख राम के अतिरिक्त और किसी के राज्य में प्राप्त हुआ होगा। यही कारण है कि हम इस समय हर्ष और शोक में अब तक राम राम कहा करते और राम राम किया करते हैं।

थोड़े ही दिनों में देश की दशा बदल गई। राम राजा तो थे ही वह अपनी प्रजा के जान और प्राण भी थे। राम उनको प्यारे थे और वह राम के प्यारे थे। राम और सीता बाप और माता के समान समझे जाते थे और प्रजा के साथ इनका व्यवहार वैसा ही था जैसे मां बाप अपनी संतान के साथ करते हैं।

पाँचवाँ समुल्लास

रीछ, राक्षस और बन्दरों की विदाई

जो रीछ, बन्दर और राक्षस दक्षिण से आये थे उनको अवध का अन्न जल कुछ ऐसा अनुकूल आगया कि वह वहाँ ही रहने की इच्छा करने लगे। लंका सोने की रही हो लेकिन आर्यवर्त आर्यवर्त ही है। यह देश फिर भी सर्व श्रेष्ठ है।

राम ने इनकी दशा देखी। मर्यादा के विरुद्ध राम का कोई काम नही होता था और वह अपने समय में मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते थे। उन्होंने एक दिन इन्हें अपने पास बुलाकर कहा—"भाइयो! तुम सब मुझे भरत और लक्ष्मण के समान प्यारे हो। मैं तुम्हारे साथ सच्चा और गहरा प्रेम रखता हूँ। लेकिन मैं स्वार्थी नहीं होना चाहता और न स्वार्थ वश होकर तुमको अधिक दिनों तक यहां रखना चाहता हूँ। तुम्हारे प्रेम और सहायता के ग्राहक तुम्हारे कुटुम्ब और घर के भी प्राणी

हैं। तुम्हें अपनी जन्म भूमि से आये हुए बहुत दिन हो गये। जी तो नहीं चाहता कि तुमको आँखों से दूर करूँ लेकिन धर्म कहता है कि तुम अब अपने अपने घरों को जाओ। अपने-अपने बाल बच्चों में रहो।"

यह सबके सब राम का मुंह देखने लगे। किसी का मुँह नहीं खुल सका। हक्का बक्का हो गये। राम ने सुनहरे वस्त्र भूषण मँगाये सबको अपने हाथ से दिये। राम का प्रसाद समझ कर सिरों पर चढ़ाया।

और तो उस समय तक कोई नहीं बोला सब के सब चुप रहे। अंगद उठे और डबडबाई हुई आंखों के साथ राम के चरण पकड़ लिये। "प्रभो! तुम अनाथों के नाथ और देवों के सहायक हो! और लोग अपने अपने घरों को जायें! मेरा घर तो आपके चरण कमल है। मैं इसे छोड़ कर कहाँ जाऊँ! बाप ने मरते समय मुझे आप ही को सौंपा था। आप ही मेरे गुरू स्वामी और माँ बाप हो। मुझे जाने के लिये न कहो। और जो चाहो कहो। मैं जन्म भर आपकी सेवा करता रहूंगा।"

यह कह अङ्गद राम के चरणों में गिरे। राम ने उन्हें उठाकर अपनी छाती से लगा लिया और समझा कर कहा— "बेटे! तू किष्किन्धा का राजकुमार और युवराज है। तुझे मैं रख तो लूँ लेकिन यह महा अनुचित होगा। राज धर्म के विरुद्ध काम करना नीति नहीं है। तू जा मेरा ध्यान किया कर। मैं तेरे साथ रहूंगा।"

राम ने अङ्गद का हाथ सुग्रीव के हाथ में देकर कहा— "यह तुम्हारा लड़का है। यह तुम्हारा युवराज है। इसके साथ प्रेम प्रीति का वर्ताव रहे और तुम्हारे पीछे यह किष्किन्धा का राजा हो।'

सुग्रीव ने चरणों पर शीश रक्खा।

तब राम ने भरत, लक्ष्मण और शत्रुहन को आज्ञा दी — "जाओ ! इनको कुछ दूर पहुँचा आओ ।"

वह इन्हें ले चले । दूर तक पहुंचा आये । हनुमान ने सुग्रीव से कहा—"मुझे आज्ञा दीजिये कुछ दिनों राम के समीप रह कर फिर आपके चरणों की सेवा करूँ ।" सुग्रीव ने स्वीकार किया और रीछ, बन्दर और राक्षसों ने हनुमान से विनय किया— "राम को हमारा स्मरण कराते रहना ।"

तब राम ने निषाद को बुलाया । वस्त्राभूषण देकर कहा— "भाई ! तुम तो मेरे समीप बासी हो । इस समय घर जाओ । धर्म कर्म का ध्यान रख कर राज काज करो । मुझे न भूलना और कभी कभी जब समय मिले मेरे पास आ जाकर मिलते रहना ।" निषाद राम की बातों को सुनकर और उनका व्यवहार देख कर अपने तन मन की सुध बुध भूल गया ।

राम से विदा हो कर निषाद अपने देश को आया और लोगों को उनकी भक्त वात्सल्यता का चर्चा सुनाता रहा ।

महारामायण

का

अनुभव खण्ड प्रथम भाग समाप्त ।

सातवें अनुभव खण्ड

के

उत्तरार्द्ध का द्वितीय भाग

पहिला समुल्लास

निर्गुण, सगुण

गरुड़ ने राम चरित्र को आदि से लेकर राज सिंहासन तक सुनाया। फिर चुप हो गये।

कागभुशण्डी ने कहा—"पक्षिराज! समेरु पर्वत पर श्रोता-गणों के बीच मैं भी राम कथा सुनाता रहता हूँ। अबके पहली बार आप के श्री मुख से उसे सुना। जो सुनने का रस हमको मिला वह कहा नहीं जा सकता। आप धन्य हो! कैसे कहें कि आप संशय ग्रसित होंगे! यह केवल राम की अपार दया है कि आप इस बहाने से हमको दर्शन देने आगये हो। जब तक राम की कृपा नहीं होती उन के भक्तों का दर्शन भी नहीं मिलता।

जब देखा शुद्धता आई, मिल गया आँख को सुख।
पाया दर्शन साधु का, जाता रहा संसार दुख॥
नारी देखे काम बाढ़े, लोभ बाढ़े धन को देख।
भय बढ़े पर्वत, नदी, अरु सागर, उजाड़ बनको देख॥
साधु आये, राम आये, राम के साधु हैं तन।
राम रहते हैं कहाँ, उनकी जगह साधु का मन॥

गरुड़—"आप उलटी बातें कहते हैं। संशय तो मेरे मन में निस्संदेह उत्पन्न हुआ था। आपके सत्संग मण्डल में आते ही उसके प्रभाव से उसकी निवृत्ती हो गई। मैं अब दुखदाई संशय को भी बुरा नहीं कहता। इसका परिणाम महा सुखदाई हुआ। न संशय होता न सुमेरु पर्वत की पंचवटी में मेरा आगमन होता और न आपका दर्शन मिलता। यह आपकी पंचवटी धन्य है जिसमें आम पीपल, बड़ नीम और पाकट के वृक्ष घनी छाया दे रहे हैं।

आये जब दीपक के मण्डल में अँधेरा उड़ गया।
आंखों की ज्योति खुली परकाश का अवसर मिला॥

कागभुशण्डी—"भगवन्! सच्ची पंचवटी तो नर शरीर है जो आकाश वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से बना है। यह नर शरीर महा दुर्लभ है। जिसे मिल गया, मिल गया। सब को नहीं मिलता और जो इसे पाकर इससे परमार्थ का लाभ उठा लेता है उसका क्या कहना है! वह सब में श्रेष्ठ होता है और अवतारों में भी मनुष्य अवतारों ही की महिमा विशेष है।

गरुड़—"अवतार तो अवतार ही है, अवतार में भेद क्यों माना जाता है?"

कागभुशण्डी—"बोले नहीं और भेद आया नहीं! इससे बचाव नहीं है लेकिन किसी से बिना बोले रहा भी नहीं जाता। जब तक मुँह न खोलो, तब तक कुशल है। बोलो और वहीं झगड़ा मचा।"

तत्व में भेद अभेद नहीं है।
वहां पुराण न, वेद नहीं है॥
तत्व शब्द को जब अलगाया।
तत् त्वम् भेद आप बन आया॥

तत् त्वम् तत्व में रहे अभेद।
नहीं वहां भ्रम नहीं भ्रम खेद॥
तत् त्वम् कहा तो हो गये दो।
युक्ति प्रमाण सुनाओ कहो॥
क्या बोलूँ बोलना न अच्छा।
बोल बोलकर झगड़ा मचा॥
चुप्प रहो अन कही भली है।
वहां अकथ यहां कथा चली है॥

गरुड़—"भेद अच्छा या अभेद अच्छा?"

कागभुशुण्डी—"अच्छों के लिये दोनों अच्छे। बुरों के लिये दोनों बुरे। लोग बिना समझे बूझे सगुण और निर्गुण शब्दों पर लड़ते झगड़ते रहते हैं। बात समझ में आजाय तो झगड़ा अभी मिट जाय। समझ में बात नहीं आती और आपस में कटे मरते हैं। पक्ष के बन्धन में बंधे हुए लड़ते झगड़ते रहते हैं।"

गरुड़—सच है। जो निर्गुण है वह गुण रहित है और जब उसमें गुण नहीं है तो वह सगुण कैसे हो जाता है?"

कागभुशुण्डी—"यह केवल उपेक्षक शब्द हैं। यह उपेक्षा के स्थल में रहते हैं। उपेक्षा को छोड़ दो, न कहीं अगुण है न सगुण है।"

गरुड़—"इस कथन से भ्रम उत्पन्न होता है।"

कागभुशुण्डी—"होना भी चाहिए। भ्रम अभ्रम, संशय निश्चय, अज्ञान ज्ञान, लोक परलोक, व्यापक अव्यापक, छिन्न प्रच्छन्न यह सबके सब उपेक्षक शब्द हैं। जहां एक रहता है दूसरा भी रहता है। एक न रहे तो दूसरा भी न रहे।"

गरुड़—"आप निर्गुण हो या सगुण हो?"

कागभुशुण्डी--"होने को दोनों हैं। न होने को एक भी नहीं है।"

गरुड़--"यह क्या ?"

कागभुशुण्डी--"यह वही है जो होना चाहिये।"

गरुड़--"दृष्टान्त ?"

कागभुशुण्डी--"जब तुम जागते हो तब छिन्न हो। जब स्वप्न देखते हो प्रच्छन्न हो। जाग्रत में सब टुकड़े टुकड़े, अलग अलग, छिन्न छिन्न, भिन्न भिन्न, अल्पज्ञ दिखाई देने लगता है। न्यून शक्ति होती है और जब स्वप्न अवस्था में जाते हो शक्ति बढ़ जाती है और अपने को व्यापक सर्वज्ञ और सर्वाधार प्रतीत करने लगते हो।"

जाग्रत लोक है, स्वप्न परलोक है।
जाग्रत अज्ञान है, स्वप्न ज्ञान है॥

जाग्रत में इन्द्रियों का बल न्यून होता है। स्वप्न में वह बढ़ जाता है।

इन्द्री स्थल सगुण, मन स्थल परलोक है।
इन्द्री स्थल सगुण, मन स्थल निर्गुण है॥

जाग्रत में सगुण रहता है, स्वप्न में निर्गुण रहता है।

जाग्रत में किसी को मारो दण्ड पाओगे। स्वप्न में मारो दण्ड न मिलेगा। दण्ड गुण और निर्दण्ड अगुण है। दण्ड पाना सगुण कहलाता है। दण्ड के भाव का अभाव होना निर्गुण है।

गरुड़--"यह तो मैंने समझ लिया। इसके परे भी कोई अवस्था है, जिसमें सगुण और निर्गुण कोई नहीं रहता; क्योंकि आपके कथनानुसार यह दोनों स्थल उपेक्षक द्वन्द हैं। इनके परे भी कुछ है ?"

कागभुशुण्डी – "हाँ है और वह कारण कहलाता है। कारण में सगुण निर्गुण, दण्ड अदण्ड, रूप अरूप, नाम अनाम, किसी का भी भान नहीं होता। इस अवस्था का नाम सुषुप्ति है जो गहरी नींद और लय मात्र है। जाग्रत में छिन्न छिन्न, भिन्न भिन्न प्रतीत होता है। स्वप्न में प्रच्छन्न और सर्वज्ञता आजाती है। सुषुप्ति में न यह है न वह है। यह लोक परलोक, ज्ञान अज्ञान, छिन्न प्रच्छन, व्यापक अव्यापक, सत असत इत्यादि दोनों में से किसी की उपेक्षा नहीं रहती। यह तुम देखते हो इसका तुमको अनुभव है। नित्य प्रति तीनों अवस्थाओं में तुम जाते रहते हो। आप इस समय अपने मन में विचार करके देख लो। सच प्रतीत हो तो निश्चय करो। झूठ हो तो उसका परित्याग कर दो।

जागते हैं हम तो आजाते हैं इन्द्री लोक में।
सोते हैं जब हम पहुँच जाते हैं मन के थोक में॥
लोक और परलोक दोनों हम में रहते हैं सदा।
मृत्यु जीवन के हम स्थल इनको कहते हैं सदा॥
जब गये कारण में फिर उनका पता चलता नहीं।
क्या सगुण है क्या अगुण, दोनों नहीं पाते कहीं॥
अपने घट में सब हैं और यह पिण्ड ही ब्रह्मांड है।
और परे दोनों के जो रहता है वह सच खंड है॥"

गरुड़- "आप सगुण उपासक हैं कि निर्गुण उपासक हैं?"

कागभुशुण्डी – "हम तो सगुण उपासना के प्रेमी हैं। हम को भक्ति प्यारी है और वह राम ही की भक्ति है। हम राम के मंगल मय चरित्र को गाते और सुनने वालों को गा गा कर सुनाते हैं।"

गरुड़ – "निर्गुण या कारण उपासना की ओर क्यों चित नहीं जाता?"

कागभुशुंडी—"बसती बसी है बस्ती में हम हैं बसे हुए।
बस्ती को छोड़ जायें कहां और किस लिए॥
जाग्रत ही में राम का दर्शन हमें मिला।
मुँह देखने का घट ही में दर्पण हमें मिला॥
अपने हैं राम, राम को अपना बना लिया।
राम आपेजगत मिथ्या को सपना बना लिया।

गरुड़—"भगवन्! एक बात मेरी समझ में नहीं आई।"

कागभुशुंडी—"वह क्या है?"

गरुड़—"वह यह है कि आपने छिन्न अवस्था को पसन्द कर लिया और प्रछिन्न को घृणित मान बैठे।"

कागभुशुण्डी-"पक्षीराज! हमारा यह भाव नहीं है। हम तो व्यापक और अव्यापक दोनों में अपने राम को देखते हैं। हमको घृणा किसी से नहीं है और राम के अतिरिक्त किसी का पक्ष भी नहीं है।"

राम जल में थल में अग्नि, वायु में रहते हैं नित।
राम में सब बस रहे हैं, राम से है हमको हित॥
है चराचर जगत अपनी, दृष्टि में जब राम मय।
राम यह है, राम वह है, चर अचर सब राम है॥
बन्दना हम सबकी करते, हैं फिर कह कर राम रूप।
राम परजा में हैं व्यापक, राम ही हैं सब के भूप॥
राम गुरू के रूप में, आये तो हम सेवक बने।
पाके दर्शन उनका मन, बाणी से हम मोहित हुए॥

गरुड़—"क्या निर्गुण और कारण का आनन्द भी आपको सगुण ही में मिलता है?"

भुशुंडी-"राम सूरज बंशी हैं। सूरज निकला सब दृष्टि में आगया। हमने राम की भक्ति करके स्वप्न और सुषुप्ति का

दृश्य भी जाग्रत ही में स्वतन्त्रता पूर्वक प्रगट करके देख लिया। ठोस रस, ठोस ज्ञान, ठोस स्वाद जाग्रत ही के स्थल में मिलता है। अन्य अवस्था में यह नहीं है। जिसने सगुण भक्ति करके जाग्रत में राम का साक्षात्कार कर लिया उसने कर लिया और जो निर्गुण और कारण के फेर में रह गया वह न इधर का हुआ न उधर का।"

जाको दर्शन इत्त है, ताको दर्शन उत्त।
जाको दर्शन इत नहीं, ताको इत्त न उत्त॥

दूसरा समुल्लास

अवतार विषय (दूसरी बार)

गरुड़— 'प्रभो! कोई कोई मनुष्य ऐसा कहते हैं कि ईश्वर अवतार नहीं लेता। ईश्वर का अवतार लेना असंभव है; क्योंकि ईश्वर व्यापक शक्ति है और वह अव्याप्य में नहीं आ सकती।"

भुशुंडी—' मनुष्य क्या कहता है और क्या नहीं कहता! इस पर मैं ध्यान नहीं देता। मेरा ध्यान केवल तुम्हारी तरफ है। तुम क्या कहते हो। तुमने पहले भी यही शंका की थी। मैं उसका उत्तर दे चुका हूं। अब तुम कहते हो कि मनुष्य ऐसा कहते हैं। मनुष्य ऐसा भी तो कहते हैं कि ईश्वर नहीं है। इस का होना असम्भव है। ईश्वर विषय आवश्यक भी नहीं है। मनुष्य ने यह प्रश्न किया होता तो मैं उसे वह उत्तर देता:— ईश्वरहै। ईश्वर व्यापक है। जो व्यापक है वही अव्यापक में आता है जैसे गंगा का पोटने स्थल में व्यापक जल घड़े, कुन्डे, मटके,

लोटे, गिलास, थाली सबमें आता है आयेगा, आया था और आसकता है। जो अव्यापक है उसका व्यापक होना चाहे समझ में न आये लेकिन व्यापक शक्ति का अव्यापक में आना इतना कठिन नहीं है जो समझ से बाहर हो; क्योंकि –

यह गुण कर्म और स्वभाव में है।

यह प्राकृतिक है।

यह सृष्टि नियम के अनुकूल है। इससे विपरीति या प्रतिकूल नहीं हैं।

ईश्वर नाम है ऐश्वर्य वाले का। एक राजा ऐश्वर्य वाला है उसका ऐश्वर्य उससे उतर कर प्रधान, दीवान, मंत्री, कोतवाल, कर्मचारी और प्यादा तक में आता है। यह वह मनुष्य अपनी फूटी आँख से चाहे तो नित्य राज काज के व्यवहार में देख सकता है। एश्वर्य का एश्वर्त्य के मंडल में उतरना उतरते रहना उतर आता सृष्टि कर्म का धर्म और कर्म है और जब राजा अपने एश्वर्य का उतार अपने कर्मचारी और प्रतिनिधि में करता कराता रहता है तो ईश्वर ने क्या दोष किया है जो अवतार धारण न कर सके।

ईश्वर परतन्त्र है तब तो कुछ कहना सुनना ही नहीं है। ईश्वर स्वतंत्र है तब उसे अल्प शक्तिमान क्यों बनाया जा रहा है। वह सर्व शक्तिवान क्यों न माना जाये!

यातो ईश्वर नहीं है और जब है तो फिर उसका हैपना सब में उतरता रहेगा या न उतरेगा? उतरेगा और जब विशेष रूप में उतरेगा तो उसी को अवतार कहा जायेगा। सामान्य रूप में तो वह सब जगह में रहता है। विशेष रूप में कहीं कहीं कभी कभी और किसी किसी में उतरता है और इसी विशेष रूप को अवतार कहते हैं। मेरी समझ में इसकी सम्भावना हर समय में है। ईश्वर का नाम स्वयंभू (आप होने वाला) है।

और वह आप जो चाहे हो सकता है और होता है। इसमें किसी को शङ्का न होनी चाहिये। जो मनुष्य ऐसी शंका करे उसे ऐ गरुड़! कह दो कि सुमेरु पर्वत पर आजाय और मैं उसे समझा दूँ। ऐसे मनुष्य तुम जैसे देवताओं के समझाने से नहीं समझेंगे। मैं कौआ हूँ और मेरी काग बुद्धि उनकी तुच्छ युक्ति की गुत्थी को सुलझा सकेगी। तुम अपनी शक्ति को विशेष रीति से अपनी चोंच में उतार लेते हो कि नहीं उतार लेते? मनुष्य अपने शरीर का सारा बल किसी एक अङ्ग में उतार लेता है कि नहीं? जब मनुष्य ऐसा कर सकता है तो जीव जन्तुओं के सारे शरीर उसी के तो हैं। उनमें वह कैसे प्रवेश नहीं कर सकता! वह जो चाहे वह कर सकता है।"

गरुड़—'मुझे तो आपकी दया से संशय नहीं रहा। उसका समाधान आपके दर्शन मात्र से पहिले ही दिन हो गया था। यह मैं औरों की बात कह रहा था।"

कागभुशुण्डी—"औरों को क्या देखना, औरों से क्या काम।
सकल देवता त्याग कर, भजिये राम का नाम॥

तीसरा समुल्लास

सच्चिदानन्द की समझ अवतार विषय से

गरुड़—"यह अवतार क्यों होता है।"

कागभुशुंडी—"सत् चित् और आनन्द के विकाश के लिये ब्रह्म सच्चिदानन्द हैं। जो सत है उसकी सत्ता विकाश पाये हुए बिना नहीं रह सकती। सत् अस्ति है। वह अस्ति उस समय तक कैसे कही जायगी जब तक उसकी सत्ता प्रगट न होगी।

जो चित है उसमें चित पनाका विकाश आवश्यक है और जो आनन्द है उसके आनन्द का भान होना भी प्राकृतिक है।

ब्रह्म का सत चित और आनन्द रूप में उतरना और उतर कर प्रकट होना अवतार कहलाता है।"

गरुड़—"यह तीन गुण हैं—सत, रज और तम। क्या इन्हीं के रूप और नाम में यह अवतार हुआ करता है?"

कागभुशुण्डी—"बात तो कुछ ऐसी ही है जैसा तुम समझ रहे हो। यह भी है और कुछ और भी है।"

गरुड़—"सत चित और आनन्द तीन हैं। लेकिन अवतार केवल तीन ही जुगों में नहीं होते उनके लिये चार युगों का प्रबन्ध है और वह सत युग त्रेता, द्वापर और कलियुग कहलाते हैं।"

भुशुंडी-"युग भी तीन ही हैं—सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इनकी पूर्ति और फिर अपने समता के रूप में लौटने का समय है।

वर्ण तीन हैं—ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य, चौथा शूद्र वर्ण इनकी पूर्ति है।

वेद तीन हैं—ऋग, साम और युजर और चौथा अथर्व वेद इनकी पूर्ति और लौटने की अवस्था है।

अवस्था तीन हैं—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों के अतिरिक्त चौथा पद उनकी पूर्ति है।

ब्रह्म का नाम ओं है। अ, उ, म्, इन तीन नामों में उस के तीन पद हैं सृष्टि स्थिति और प्रलय और ओं नाम की चोटी पर जो बिन्दी और अनुस्वार है वह उसका चौथा पद है।

गुण भी तीन ही हैं-सत रज, तम और इनकी सम्मिलित अवस्था इनकी समता की पूर्ति है।

और इसी प्रकार जितना तुम विचार करते चलोगे तीन ही तीन को विकाश के रूप में देखोगे और जब यह विकाश पाकर फिर समता में चले जाते हैं तब वही इनका चौथा पद ठहरता है।"

गरुड़--"भगवन्! आपने इस समय ऐसी विचित्र बात कही है जिस पर मैंने कभी विचार नहीं किया। सुनने को तो मैंने इन शब्दों को सुन रक्खा है, लेकिन इनका रहस्य क्या है, वह न मैंने जाना और न कभी इधर ध्यान ही दिया।"

भुशुण्डी-"समय समय की बात है। कभी बीज अँखुआता है, कभी पेड़ बनाता है, कभी फूलता है और चौथी अवस्था में वह फल लाता है। यह कोई नई बात नहीं है। यह स्वाभाविक, प्राकृतिक और सृष्टिक्रम के अनुसार है। विचारशील पुरुष कोई कोई होते हैं।"

गरुड़—"मैं आपके इस नवीन सिद्धान्त को आश्चर्य की दृष्टि से देखता हुआ इस पर विचार करना चाहता हूँ। आज्ञा हो तो मैं पृथक पृथक प्रश्न करता चलूँ और आप उनका उत्तर देते चलें।"

भुशुंडी--"प्रभो! सत्संग का लाभ भी ऐसे ही होता है। राम ने बड़ी दया की कि आप समेरु पर्वत पर मेरे पास आ गये। आपके समागम से मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ।"

सन्त का दर्शन मिला, आनन्द दायक समय है।
आप से मिलकर मुझे अब, प्राप्त सुख और चैन है॥
राम की जब तक अपार, ऐसी दया होती नहीं।
बुद्धि तब तक अपने मैल, और दोष को धोती नहीं॥

आप आये अच्छे आये, प्रश्न मुझसे पूछिये ।
जो समझता हूँ कहूंगा, मुझसे उत्तर लीजिये ॥
आगे उत्तर में उत्तर खण्ड, ही है ज्ञान गम ।
है समाधान इसमें इस ही में, दम और शम है ॥
धन्य जीवन है मेरा, अब आपका दर्शन मिला ।
रूप के लक्षने परखने, का मुझे दर्शन मिला ॥
ऐ गरुड़ ! मैं जानता हूं आप पूरण काम हो ।
इस समय मुझ पर दयालु, मेरे सीता राम हो ॥
आपका दर्शन मिला, आनन्द मंगल मिल गया ।
सोचने को बूझने को बुद्धि दङ्गल मिल गया ॥

चौथा समुल्लास

तीन (या चार) युगों के अवतार

गरुड़--"भगवन् ! ब्रह्म को अवतार धारण करने की आवश्यकता क्यों हुई !"

भुशुंडी--"महात्मन ! यह प्रश्न तो वैसे ही है जैसे कोई किसी अस्ति (हस्ती) से पूछे कि तू क्यों प्रकट हुई । महाराज ! जब तक कोई अस्ति विकाश रूप में आकर अपने प्रकाश को प्रकट न करे तो आप उस अस्ति को अस्ति कैसे कहोगे । यह तो उसका गुण है । यह स्वाभाविक है । समुद्र से पूछो वह क्यों लहराता है ! सूरज से पछो तुझे चमक दमक दिखाने की क्या आवश्यकता है ! और वह तुम्हें क्या उत्तर देगा ।"

जो सत है सतकी वह सत्ता दिखायेगा अपनी ।
जो चित बना है वह, चित्ता दिखायेगा अपनी ॥

स्वभाव जिसका है आनन्द, सुख का रूप है वह।
उसी में चैन है सुख, शान्ति का कूप है वह॥

गरुड़—"बस! मुझे सच्चा उत्तर मिल गया। मैं दक्षिणी प्रश्न के उत्तर खण्ड में पहुँच गया। इस ब्रह्म का रूप सत है और उसके सतपने का विकाश होना आवश्यक है। प्रभो! इस ब्रह्म का ब्रह्म नाम क्यों पड़ा?"

भुशुंडी—"ब्रह्म शब्द के दो भाग हैं। ब्रह और मनन। ब्रह कहते हैं बढ़ने को और मनन कहते हैं सोचने को। जो बढ़ता और सोचता है वह ब्रह्म है। इसलिए उसका यह नाम है।"

गरुड़—"वह क्यों बढ़ता और सोचता है?"

भुशुण्डी—"क्योंकि वह ब्रह्म है। यथा नामः तथा गुणः। जैसा जिसका नाम होता है वैसा ही उसका गुण भी होता है। जो बात मैंने सत और असत के विषय में कही है वही इस ब्रह्म पद के अर्थ में भी समझ लो।"

गरुड़—"सच है। इसके सच होने में कोई सन्देह नहीं है। यह उसका रूप है तब ऐसा नाम रक्खा गया है।"

भुशुण्डी—"इस ब्रह्म के दो रूप हैं। एक आधार मात्र और दूसरा धार। आधार तो अधिष्ठान है और धार वह है जो उससे निकलती, बहती और जारी रहती है। आधार रूप से वह कुछ करता धरता नहीं। धार रूप से जगत् की रचना इस में होती रहती है। वह एक सागर के समान है। अपने रूप में स्थित रह कर लहराता रहता है और यह रचना उसी की लहरों के अन्तर्गत होती रहती है। तुम विचार करोगे तो इस ब्रह्म और ब्रह्म के नाम में विचार मात्र से तुमको निर्गुण और सगुण ब्रह्म का दर्शन मिलेगा। इन शब्दों की जड़ यहां है और

यह वैसा ही है जैसे तुम या और कोई प्राण धारी प्राणी अपने निज स्वरूप में स्थिति रह कर सांस लिया करता है। व्यवहार इसकी सांस में है। अब किसी वस्तु को देखो उसमें यह दोनों गुण किसी न किसी अङ्ग में तुमको दिखाई दे जांयगे।

साँस आती है साँस जाती है।
साँस यह सांस में समाती है॥

पहिली रेचक है दूसरी पूरक।
तीसरी को समझलो तुम कुम्भक॥

जीव में जन्तुओं में परखो इसे।
वृक्ष और तत्वओं में भी निरखो इसे॥

है बिना सांस के कहां प्राणी।
समझे यह बात कोई विज्ञानी॥

ब्रह्म मय यह जगत है ब्रह्म है सब।
ब्रह्म तब था तो ब्रह्म ब्रह्म है अब॥

गरुड़-"मेरी अन्तर्दृष्टि खुल गई। मैंने विचार दृष्टि से इस दृश्य को देख लिया। यह अवतार कितने होते हैं?"

भुशुण्डी-"नाना भांति राम अवतारा।
रामायण शतकोटि अपारा॥

इसकी गिनती गिनना मेरी बुद्धि की सामर्थ्य से बाहर है। हां, जहां तक मैंने विचारा है मुख्य अवतार नौ कहलाते और नौ होते हैं।"

गरुड़- "कौन कौन?"

भुशुंडी- "सत जुग में चार, जो मच्छ, कच्छ, बाराह और नृसिंह कहलाते हैं। त्रेता में तीन, जिनके नाम हैं बावन, परशुराम और राम। राम ने इस समय अवतार धारण कर रक्खा है, जिनकी कथा तुमने मुझे आकार सुनाई और जिन पर तुमको संशय हुआ था कि वह ब्रह्म के अवतार नहीं हैं। द्वापर

में कृष्ण और बुद्ध के दो अवतार होंगे। यह सब मिलकर नौ होते हैं और गिनती भी केवल नौ की मानी गई है।"

गरुड़—"ठीक है। फिर क्या और अवतार न होंगे?"

भुशुंड—"कलिजुग में केवल एक अवतार कल्कि भगवान का होगा जो इस चतुर्युगी में राम का दसवाँ अवतार कहा जायगा। इसके बिषय में कल प्रश्न करना। कलिजुग चतुर्युगी का चौथा पद है। यह मैंने तुमको पहिले से कह रक्खा है। इस गिनती के अनुसार राम के दस अवतार तुम मान सकते हो।"

पांचवाँ समुल्लास

अवतारों के विषय में क्यों? का प्रश्न

गरुड़ ने पूछा—"यह भेद है। चार, तीन, दो, एक की उलटी गिनती अवतारों के विषय में क्यों गिनाई। सतयुग में चार, त्रेता में तीन, द्वापर में दो और कलयुग में एक अवतार क्यों होते हैं या क्यों होंगे?"

काग भुशुंडी ने उत्तर दिया—"अवतारों में ऐसा ही होता है और होना भी ऐसा ही चाहिये।

सत शब्द संस्कृत धातु अस (होना) से निकला है और युग कहते हैं मिलाप या समय को। सत के मिलाप और सत के समय को सतयुग कहते हैं और अस (होना) जीवन है। जहाँ जीवन ही जीवन और जीने ही जीने का भाव, विकाश और प्रकाश हो वहां सम्पूर्ण जीवन ही जीवन रहता है और उसके चारों अंग या चारों पद बराबर होते हैं। उनमें बढ़ाव घटाव नहीं होता। जीवन ही जीवन पूरा रहता है इसलिये इसके चार अवतार हैं। मच्छ, कच्छ, बाराह, नृसिंह।

मच्छ या मत्स्य संस्कृत धातु मद (सुख) से बना है। यह जीवन ही जीवन है और जीवन ही जीवन का सुख है। जीवन के अतिरिक्त और कोई भाव, विकाश या प्रकाश नहीं रहता। जैसे पानी में मछली तो बन जाती है लेकिन वह मछली पानी ही में रहती है पानी के बाहर नहीं आती। पानी ही इसका जीवन होता है। जीवन जीवन ही में रहता है। वह केवल जीवन ही जीवन है। और जीवन के सम्पूर्ण विकाश या चार पावों वाले प्रकाश का भान मछली में देखा जाता है, जिसमें केवल सर ही सर है। यह सतयुग का पहला अवतार है।

कूर्म शब्द संस्कृत धातु कू (उलटी) और उरभी (तेजी) से निकला है। उलटी तेजी वाले का नाम कूर्म है। इसमें भी जीवन ही का विकाश, भाव और प्रकाश है। जहां कोई बात ऐसी हुई जो जीवन की बाधा है तब कूर्म बिना समझे बूझे स्वाभाविक रीति से अपने अन्तर में लौट आता है। इसी उपेक्षा के कारण इसका नाम कूर्म रक्खा गया है। कूर्म कछुए को कहते हैं। यह सतयुग का अवतार है।

वाराह संस्कृत धातु वर (सबसे अच्छा और श्रेष्ठ) और हन (मारन) से बना है। जो सबसे अच्छी मार मारे वह वाराह है। और यह सचमुच अच्छी मार का मारने वाला और मारने में श्रेष्ठ है। इसलिये इसका नाम वाराह रक्खा गया। इसे सूअर भी कहते हैं। सूअर के लिये संस्कृत शब्द शूकर (शू—शब्द) कर (करना) बोला जाता है। सूकर गुर्राता है। यह सतयुग का तीसरा अवतार है जो गुर्राहट के साथ है।

नृसिंह—संस्कृत धातु नर (मनुष्य) और सिंह (चौपाया-चार पाँव से चलने वाले पशुओं को कहते हैं) से बना है। जिसका सिर मनुष्य का हो और धड़ पशु का हो और चार

खुरों से चले वह नृसिंह है। यह नहीं कि सिर तो व्याघ्र और शेर का हो और चार पावों से चलकर और चारों पांवों को निकाल कर दिखा देता है कि सतयुग का चार पद वाला युग अब समाप्त हो गया। यह चौथा अवतार है।

ऐ गरुड़! पुराणों की यह शिक्षा सृष्टि क्रम के अनुसार है और यही दृश्य हमारी तुम्हारी आँखों के सामने पल छिन रहता है। कोई अन्धा काना तिरछा हो उसे न दिखाई दे तो यह उसकी आखों का दोष है। मैं आगे चल कर तुमको स्पष्ट रीति से समझाऊँगा कि पुराणों का कथन निर्दोष, पूर्ण और विचार उत्तेजक है।

सतयुग में केवल जीवन, जीवन का विकाश प्रकाश, और भाव रहता है। जीवन के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता।

सतयुगी जीवन है पूरा, चार पग वाला गरुड़।
जो न समझे भेद को, है कुमग वाला गरुड़॥
मत्स्य है और कूर्म है, बाराह है नृसिंह है।
चार जीवन की अवस्था, चारों ही है ब्रह्म है॥
सिर बना तब मत्स्य है, और धड़ बना कछुआ हुआ।
क्षीर सागर मथके चौदह, रत्न के धन को लिया॥
क्षीर सागर के निकल कर, खंग से पृथ्वी उठा।
आया उससे बाहर अपने, गुण को प्रगट कर दिया॥
फिर बना नृसिंह नर, और पशु के देह का मेल है।
ब्रह्म जीवन का यह कौतुक, देखो कैसा खेल है॥
यह है सतयुग, सतयुगी जीवन के हैं अवतार चार।
ऐ गरुड़। बातों का मेरे, सुनके कर लीजे विचार॥
मैं नहीं तुम से छुपाता, भेद कहता हूं सही।
तुम समझलो बूझलो, दुर्मति न मन में फिर रही॥

संशय का जीवन नहीं अच्छा, यह दुःख का रूप है।
संशय दुख केवल नहीं, यह दुख का गहरा कूप है॥
राम आये इस जगह में, ब्रह्म के अवतार बन।
छोड़ कर नगरी अयोध्या, को चले वह सूने बन॥
मन में देखा चित्र जीवन का, जो आये चित्रकोट।
मारा खरदूषण को सर से, फेंका ढाला दोष पोट॥
चढ़ गये लंका वहाँ, रावण को मारा बाण से।
साथ सीता को लिया, लौटे अवध को शान से॥
चारों भाई मिलगये, सतयुग की महिमा को दिखा।
दोष त्रेता का मिटा, सतयुग का सत प्रगट किया॥
त्रेता को तब युग बनाया, किसने? सीताराम ने।
वृद्धि और उन्नति दिखाया, किसने? सीताराम ने॥
राम ही हैं ब्रह्म पूरन, ब्रह्म के अवतार हैं।
ऐ गरुड़! शंका न कीजो, राम सत करतार हैं॥

छटा समुल्लास

क्यों? लगातार त्रेता के अवतार

गरुड़—"त्रेता में तीन ही अवतार क्यों हुए?"

भुशुंडी—'चित शक्ति कुछ विशेषता के साथ आ गई। जीवन ने उसे अपने में स्थान दिया। उसका एक अंग या एक पद दब गया और तीन टांग रह गईं। तीन टांग-जीवन या सत की और एक चित की। चित का उभार हुआ।

त्रेता संस्कृत धातु त्रय (रक्षा) से निकला है। इस युग में 'रक्षा' और सुरक्षा का विचार घने पनके साथ उत्पन्न हो जाता

है। चित शक्ति अपने साथ रक्षा के चिन्तन और चिन्ता को लाती है। राक्षस (निज रक्षा करने वाले स्वार्थी) अधिकता से प्रगट हो जाते हैं। अपनी रक्षा के लिये खाना, अपनी रक्षा के लिये पीना अपनी ही रक्षा के लिये उद्यम उद्योग और तीन कर्म करना यह राक्षसों का धर्म होता है। यह तिटंगा धर्म है। ब्रह्म के अवतार इसकी पूर्ति के लिये होते हैं।

और यह तीन हैं और यह तीनों अपनी अपनी बारी पर उस टूटी हुई टांग की पूर्ति करते हैं।

पहिला अवतार वामन है, जो संस्कृत धात वम (मुंह से निकालना) से बना है। नर और पशु की सम्मिलित अवस्था की नृसिंह के अवतार से समाप्ति होगई। पशुपने का अभाव हुआ नरपने की अधिकता और विशेषता आने लगी और जीवन ने वामन (छोटे मनुष्य-वावन) का रूप धारण किया जो मुँह से अपनी आवश्यकता को प्रकट करता है, बोलता है और बोलने ही से उसका काम होता है। करना धरना अब भी नहीं। बोलने मात्र से रक्षा होती है। यह त्रेता का पहिला अवतार है। जो पाँचवें मण्डल या लोक से आया जिसे जन लोक कहते हैं। सत्युग के चारों अवतार भूः, भुवः, स्वः, महः से आये थे।

परशुराम त्रेता का दूसरा अवतार है। यह शब्द संस्कृत धातु परशु (फरसा या फावड़ा) और राम (रमने वाला, प्रसन्न होने वाला) से बना है। जो फावड़े और कुल्हाड़े से काम लेकर प्रसन्न हो वह परशुराम है। इसने क्या किया ? स्वार्थी और स्वरक्षक क्षत्रियों का नाश करके सत्युगी जीवन की एक टूटी हुई टांग की पूर्ति की। क्षत्री महा अहंकारी हो गये थे। अपनी ही भलाई चाहते थे। औरों की रक्षा और भलाई का उन

को ध्यान नहीं था। इसलिए परशुराम ने उन्हें अपने परसे के घाट उतार कर त्रुटि की पूर्ति की।

क्षत्रियों का नाश हुआ। परशुराम का करतब बस इतना ही था। इधर क्षत्री मरे, उधर दक्षिण के ब्राह्मण कुल में निज अर्थ के साधन में रहने वाले राक्षस (अपनी ही रक्षा करने वाले) अधिकता के साथ उत्पन्न हो गए। क्योंकि परशुराम ने क्षत्रियों का राज काज छीन कर ब्राह्मणों ही को दिया था, यह ब्राह्मण राज को पाकर ऐसे घमंडी हो गए कि अपने अतिरिक्त औरों को तुच्छ समझने लगे। बहुत ऊधम मचा। अत्याचार फैल गया। वह पृथ्वी पर बोझ हो गए। देवताओं का नाक में दम आगया। इस दशा में राम का ब्रह्म अवतार क्षत्री कुल में हुआ। इन्होंने राक्षसों को बाण के घाट पर लगाया। राक्षस महाबली, जोधा, विद्या बुद्धि निपुण, कला कौशल में प्रवीण थे। राम ने प्रकट होकर इनका नाश कर दिया। मर्यादा की शिक्षा दी। जगत् को मर्यादा बद्ध कर दिया और इसी की सहायता से टूटी टाङ्ग की पूर्ति हुई थी। ऐ गरुड़! परशुराम का अवतार तो छटे लोक तप लोक से हुआ था और राम का अवतार सातवें लोक सत लोक से हुआ था। इसलिए इन्हें पूर्ण ब्रह्म का अवतार समझा जाता है। उनकी बराबरी किस से हो सकती है। उनके ब्रह्म के अवतार होने में किसी को शंका न करनी चाहिए।"

गरुड़ ने पूछा—"भगवन्! सत्युग की चार टाङ्गों का तो आपने पूरा पूरा पता बता दिया, लेकिन त्रेता के तिटंगे पने का भेद मुझे नहीं दिया, क्योंकि हम मनुष्य में तीन टाङ्ग नहीं देखते।"

भुशुण्डी हँसे - "तुमने राम रावण का युद्ध देखा। उसमें भाग भी लिया और फिर भी शंका! अच्छा क्या हुआ!

इसका भ. मैं समाधान किए देता हूँ। राम ने बानरों की सेना इकट्ठी की थी। बानर (संस्कृत बा=सदृश्य और नर-मनुष्य) मनुष्य के समान जो नर है वह बानर है। इसके पूँछ होती है। यह इसकी तीसरी टांग है। पहिले मनुष्य के भी पूँछ का होना सम्भव था। घृणा हुई सभ्यता बढ़ गई। प्रकृति ने इसकी इच्छा की प्रबलता को देख कर पूँछ काटली और वह बावन अवतार के समय से दो टंगा होगया। लेकिन वह पूँछ मनुष्य के अब तक है। उसके कटने का निशान मिलता है। वह पीठ की हड्डी (मेरुदण्ड) के नीचे और सुषुम्ना नाड़ी से मिली जुली है। जहां यह है वहां ही मूला धार चक्र है और जब मनुष्य की दोनों टांगें बेकाम हो जाती हैं तब वह इसी तीसरी टाँग से चलने का काम लेता है और चूतड़ के बल फिसल कर और घिसल कर चलता है। लो, इस तीसरी टाङ्ग का भी तुमको पता दे दिया।

सातवां समुल्लास

क्यों ? लगातार द्वापुर के अवतार

गरुड़—"अभी त्रेता है। राम राज है। राम ने राक्षसों को मार कर रक्षा का प्रबन्ध किया और इस प्रबन्ध का नाम मर्यादा रक्खा। मर्यादा त्रेता से चलती है। सत्युग में मर्यादा नहीं रहती। त्रेता के पीछे द्वापर आयेगा। इसकी क्या दशा होगी ? इसमें कितने अवतार होते हैं ?"

भुशुण्डी--"देखो, केवल यह चित शक्ति का प्रभाव है जो तुमको भविष्य के विचार की ओर लिए जा रहा है।

द्वापर संस्कृत धातु द्वा (दो) और पर (पीछे) से बना है। त्रेता के पीछे जो द्वन्द पना, दोपना और दुचित पना आता है। उसकी उपेक्षा से उसका यह नाम रक्खा गया है। सतयुग में सत चार भाग सम्पूर्ण था। चित का उभार इतना नहीं था। त्रेता में स्वरक्षा के विचार के आने से सत् के तीन भाग रह गए और एक भाग चित ने ले लिया। अवतार या अवतारों ने मर्यादा बाँध कर उसकी पूर्ति की। अब जब कि द्वापर आगया सत् के दो भाग हो गए और दो ही भाग चित के हो गए। दोनों बराबर बराबर हो गए। द्वन्द पना विशेष आ गया। खींच तान का प्रारम्भ हुआ। राक्षस पना तो है। अब रक्षा का भाव राम की मर्यादा से दब गया था। शान्ति आगई थी। सत् जीवन की ओर सबकी दृष्टि रहने लगी थी। अब वहाँ स्वार्थ की अधिकता हो गई। साथ ही मनुष्यों ने अपनी संसारी बासनाओं और आवश्यकताओं को बहुत बढ़ा दिया। जिनसे उन्हें महा दुख होने लगा और नाना प्रकार की छेड़ छाड़, मार धाड़, ऊधम अत्याचार, फैलेंगे यह दशा अच्छी नहीं होगी। पृथ्वी दो लड़ाकों का दङ्गल बन जायगी। मल्ल युद्ध बढ़ जाएगा। लोग मर्यादा भ्रष्ट और मर्यादा के भङ्ग करने वाले बन जायंगे। इसकी रोक थाम के लिए दो अवतार होंगे। एक देवकी पुत्र कृष्ण का और दूसरा माया पुत्र गौतम बुद्ध सिद्धार्थ का।

कृष्ण प्रकट होकर समझायेंगे कि द्वन्द रोग की औषधि प्रेम है। परस्पर प्रेम को बढ़ा दो। प्रेम का जीवन जीने लगो और सत की त्रुटि की आप ही आप पूर्ति होगी। कृष्ण प्रेम की मूर्ति होंगे।

और जब यह सत की हानि की पूर्ति करके गुप्त हो जायेंगे और द्वन्दपना हाथ पाँव बढ़ा कर विशेष हाथा पांई करने लगेगा और संसार दुखी होगा उस समय सिद्धार्थ गौतम बुद्ध प्रकट होकर सबको ज्ञान बतायेंगे। सत की दो टाङ्गों की पूर्ति ज्ञान से करायेंगे। इस ज्ञान का नाम बुद्धि रक्खा जायगा, क्योंकि इस शिक्षा का सम्बन्ध बद्धि ही से होगा और यह इस उपाय से संसार में शान्ति लायेंगे।

ऐ गरुड़! द्वापर युग का प्रभाव और परिणाम ऐसा होगा।

यह समय त्रेता का है। हम तुम दोनों त्रेता के पक्ष व पक्षी हैं। इसी से हमको सम्बन्ध है। द्वापर में और क्या क्या होगा इसका और विचार इस समय सुमेरु पर्वत पर निरर्थक है। तुमने पूछा मैंने जो समझा तुम्हें समझा दिया। भविष्य काल की लीला भविष्य काल में होगी। जो प्राणी उस युग में उत्पन्न होंगे वह उसे भोगेंगे और उपाय से काम लेंगे। हमारा धर्म इस राम राज में केवल मर्यादा पद्धति पर चलना और सत का जीवन मर्यादा की सहायता से प्राप्त कर लेना है।

त्रेता युग के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं।
द्वापर युग के कृष्ण प्रेम पुरुषोत्तम होंगे॥
द्वापर युग के बुद्ध ज्ञान पुरुषोत्तम होंगे।
और कलियुग के कल्की भगवान नाम पुरुषोत्तम होंगे।"

आठवां समुल्लास

क्यों? लगातार कलियुग का अवतार

गरुड़—"आपने वर्तमान चतुर्युगी के तीन युगों के अवतार बता दिए। सत् युग हमारे लिए भूत (गया हुआ)

युग है। त्रेता वर्तमान है। द्वापर भविष्य होगा और द्वापर के पीछे कलियुग आयगा, जिसमें आप कहते हैं कि केवल एक ही अवतार होगा। चार तीन दो को तो मैंने अपनी समझ के अनुसार समझ लिया और सन्देह विगत होगया। अब कलि-युग के गुण भी लगे हाथ सुना दीजिये।"

भुशुण्डी—"कलि संस्कृत शब्द कल (गिनती) से बना है। इस युग में गिन्ती गिनाई जाती है। मनुष्य का कोई काम गिन्ती के बिना नहीं होता। चित शक्ति बढ़ते बढ़ते ३ होजाती है और गिन्ती गिनते गिनते मनुष्य के हर काम में त्रुटि और निबलता आजाती है।"

गरुड़—"गिनती गिनने या गिनाने से आपका मन्तव्य क्या है ?"

भुशुण्डी—"बुद्धि इतनी प्रचण्ड हो जाती है कि वह सब को छिन्न भिन्न करती हुई संसार में फूट फैला देती है। लड़ाई झगड़े, दँगे बखेड़े. मार धाड़, द्वेष ईर्षा, आदि मन के दोष इतने बढ़ जाते हैं कि किसी को किसी का विश्वास नहीं होता। परस्पर विश्वास की जड़ कट जाती है। कर्म धर्म का नाश होने लग जाता है। सतयुग का ध्यान, त्रेता की यज्ञ मर्यादा, द्वापर के प्रेम और ज्ञान की शिक्षा दीक्षा सब जाती रहती है और बुद्ध का ज्ञान बुद्धि में बदल कर इतना उत्पात फैला देता है कि जीवन का सत्य संभालना महा कठिन व्यौहार होजाता है। नाज कम उत्पन्न होता है। लोग भूके रहते हैं भूके मरते हैं। एक दूसरे का बैरी बन जाता है। शान्ति कोसों दूर भाग जाती है।

गिन्ती गिनाने का मन्तव्य यह है कि लोग मिलेंगे तो मिलते ही पूछेंगे, कुशल है ? क्या पीते खाते हो ? कितनी

आमदनी है ? घर में कितने प्राणी हैं ? पृथ्वी पर कितने मनुष्य रहते हैं ? एक देश की बस्ती कितनी है। कहाँ क्या क्या पदार्थ और कितने कितने हैं ? कहां कैसे और किन किन उपायों से जाना होता है ? और कैसे कैसे और कितने ढंग काम में लाये जाँय कि दूसरे देश वालों का धन हमारे हाथों में आजाय।

खाना, पीना, व्यौपार, व्यवहार, उठना, बैठना, आना, जाना सबकी गिन्ती होने लगेगी। गिन्ती के बिना एक काम भी न होगा।

चित शक्ति की बुद्धि पृथ्वी आकाश के मण्डलों की माप तोल करेगी और उनके छिन्न भिन्न करने और उन पर अपना सिक्का जमाने का प्रबन्ध करेगी और जैसे जैसे यह बुद्धि बढ़ती जायगी वैसे वैसे मन की चञ्चलता बढ़ कर दुख और अशान्ति फैलायगी। सचाई किसी में न रहेगी। दिखाने के काम बहुत होंगे। पाप बहुत और धर्म कर्म ! और वह भी दिखावे का।

मतमतान्तर की गिन्ती दिन प्रतिदिन बढ़ेगी और जो ज्ञान द्वापर में शान्ति दायक हुआ था उसकी अनेक शाखायें फूट फूट कर बादविवाद, पक्षपात, लड़ाई दङ्गा फैलायेंगी। लोग अपने को अच्छा और दूसरों को बुरा समझेंगे। यह सब परिणाम बुद्धि का होगा।"

गरुड़—"फिर क्या होगा ?"

भुशुण्डी—"जैसे पहिले अवतारों ने प्रकट होकर सुधार का काम किया था वैसे ही कलियुग के मध्य में घोर पाप में डूबे हुये संसार को कल्कि भगवान् आकर सँभालेंगे और पापियों का नाश करके नई सृष्टि का प्रबन्ध करेंगे।

मनुष्य फिर धीरे धीरे सँभल कर आपस में मिलेंगे और इसी कलियुग के बचे खुचे पेट से फिर सतयुग निकलेगा और दूसरी चतुर्युगी आयेगी।

ऐ गरुड़! यह काल चक्र यों ही चला करता है। यह बन्द नहीं होता। इसके प्रवाह को कोई नहीं रोक सकता। न इसका आदि है न अन्त है। कई चतुर्युगियों का एक कल्प होता है और कल्प तक सृष्टि बनती बिगड़ती हुई चलती रहती है। लय और प्रलय की अवस्था आती हैं और इसके पश्चात् फिर यों ही ताने बाने का उधेड़ बुन होने लगता है।

इन बातों में क्यों पड़ना! समय मिला है। जीवन का अवसर हाथ आया है। अपना काम बनाओ और चलते बनो।"

गरुड़—"भगवन! आपने कहा कि राम ने मर्य्यादा के प्रबन्ध से जगत का कल्याण किया है और आपने यह भी कहा कि द्वापर में कृष्ण प्रेम से और बुद्ध ज्ञान से जगत का सुधार करेंगे, लेकिन आपने यह नहीं बताया कि कल्कि भगवान किस उपाय या यत्न से काम लेंगे?"

काग भुशुंडी—"वह उपाय केवल नाम होगा और कुछ न होगा।"

नवां समुल्लास

युगों का धर्म और नाम की महिमा

गरुड़—"तब तो कलियुग सबसे अच्छा है। दूसरे युगों के उपाय कठिन हैं। कलियुग में नाम लिया और बेड़ा पार है। हल्दी लगे न फिटकरी और रङ्ग चोखा होय।"

कागभुशुण्डी-"कठिनाई किसी में भी नहीं है। जो प्राकृतिक है उसमें बहुत परिश्रम नहीं करना पड़ता। यह मनुष्य का मन है जो कठिनाइयों की मानसिक गढ़त करता रहता है और जो बात सुगम और सरल हैं उसे भी कठिन कर लेता है। तुम को साधनों का ज्ञान नहीं है इसलिये ऐसा कहते हो, नहीं तो साधन अत्यन्त सरल और सुगम हैं और इन्हीं साधनों को धर्म कहते हैं। जो मन से मन में धारण करके उससे काम लिया जाय वही धर्म कहलाता है। धर्म संस्कृत धातु धरि (धारण करना) और म (मन) से निकला है। मन में किसी अच्छे भाव का धारण कर लेना क्या कठिन काम है? ऐ गरुड़! यह स्वाभाविक है और सब में यह शक्ति स्वयं रहती है।

गरुड़—"अनेक युगों के अनेक धर्म क्या क्या होते हैं?"

भुशुंडी-"सुनो! स्मरण रक्खो, भूलो नहीं, सोचो और विचारो भी कि यह सच है या झूठ है, तब मानो। ऐसे मेरे कहने से न मानो। मैं तुमको केवल विचार देता हूं और इस विचार की जड़ और उसका यथावत तथा वास्तविक ज्ञान तुम्हारे घट में है:--

ध्यान प्रथम युग, मख युग दूजे।
द्वापर परितोषित, प्रभु पूजे॥
कलि केवल इक नाम अधारा।
श्रुति पुराण, संत मत सारा॥
कलियुग कर्म धर्म नहिं कोई।
नाम बिना उद्धार न होई॥

सत युग का धर्म ध्यान मात्र है जिसके शिक्षा और दीक्षा की भी आवश्यकता नहीं है।

त्रेता का धर्म यज्ञ मात्र है। इसे सचमुच समझाना बुझाना पड़ता है, लेकिन कठिन यह भी नहीं हैं।

द्वापर का धर्म मूर्ति पूजा, स्मार्त्त चिन्ह और आकार बना कर उससे काम लेना है। इसे भी समझाना बुझाना पड़ता है। यज्ञ से यह कुछ विशेष प्रयत्न चाहता है।

कलियुग का धर्म केवल नाम है जो निरूपण और प्रयत्न के आधीन है। होने को यह भी स्वाभाविक और सुगम होता है लेकिन गुरू की सहायता और भक्ति के बिना इसकी प्राप्ति नहीं होती। यह गुरू के आधीन है।

इस कलिजुग में मनुष्य कोई साधन न करे। केवल नाम के प्रयत्न में लगा रहे और उसका कल्याण होगा। नाम सहायक बनकर जब साक्षात्कार करा देगा फिर मुक्ति ही मुक्ति है।"

गरुड़ "आप का समझाना विचित्र है। आप समझे बूझे हो। आपका कपाट खुल गया है। मस्तिष्क प्रकाशवान है और हृदय महा शुद्ध और निर्मल है। गुत्थी सुलझी हुई है और आप दूसरों की गुत्थी सुलझाने की सामर्थ्य रखते हैं—

गुत्थी मन की विकट है, सुलझाये कोई साध।
सुलझे निज गुत्थी जभी, सूझे अगम अगाध॥

अब आप दया करके हर एक युगों के धर्म पर कुछ और विशेष प्रकाश डाल दीजिये, जिससे यह अच्छे प्रकार समझ बूझ में आजाय।"

भुशुंडी—"तुम देख चुके हो कि सतयुग में चार अवतार होते हैं—मच्छ कच्छ, बाराह और नृसिंह। इन चारों अवतारों में कोई भी कर्म या कर्त्तव नहीं किया जाता। ध्यान आया और उसी समय आप ही आप काम हो जाता है। उस समय के जीवन में इस ध्यान का किंचित ज्ञान भी नहीं होता। मच्छ कच्छ क्षीर सागर में रहकर स्वयं पलते और कुलेल करते रहते

हैं। यह अन्तर का जीवन है जो दो प्रकार का है। यह क्षीर सागर में रहकर क्या काम करते हैं कुछ भी नहीं। बाराह और नृसिंह का क्षीर सागर के बाहर आकर जीना या जीवन है। इसका भी कोई करतब नहीं है। ध्यान आया और काम बना।

यह सतयुग का धर्म-स्वधर्म और सुधर्म है।

मैंने तुमसे कहा कि त्रेता का धर्म यज्ञ है। यज्ञ कहते हैं पूजा को। पूजा की रीति का नाम यज्ञ है। इसका प्रबन्ध मन, कर्म और बाणी से होता है। और इसका आरम्भ बावन महाराज की बाणी से, परशुराम के कर्म से और राम के मन से होता है। बावन ने तीन पग पृथ्वी मांगी। परशुराम ने अपने कर्म और पराक्रम के बल से सारी पृथ्वी क्षत्रियों से छीन ली और राम ने अपने मन से काम लेकर मन की तीनों वृत्तियां-अज्ञानी (राक्षस) मूढ़ (रीछ) चंचल (बन्दरों) को एकाग्र किया और उनकी सहायता और साधना से रजोगुण रावण को विजय करके धर्म मर्यादा की नींव डाली। जिसने रजो गुण को जीत लिया उसने सारे जगत को जीत लिया।

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
परमब्रह्म को पाइये, मन ही की परतीत॥

यह यज्ञ है। मन को एकाग्र करके अन्तर की तीन प्रकार की दबी हुई गार्हपत्य आदि अग्नि को प्रज्वलित करना और उसके प्रकाश में मन के रूप का साक्षात्कार करते हुए ध्यान शक्ति को प्रबल कर लेना यह यज्ञ है। यह यज्ञ नाभि, हृदय, भ्रू मध्य आदि को वेदी से आरम्भ करके मस्तिष्क या सिर में धारण करने से होता है। यह यज्ञ व्रत शिरो व्रत धारण करना कहलाता है। इसमें मन की वृत्तियों की आहुति अन्तरी चक्रों की वेदी के अग्नि कुंड में उसी प्रकार दी जाती हैं जैसे रावण

के युद्ध कुण्ड की अग्नि में राम ने ब्रह्म सर, शक्ति सर और सूर्य सर के बाणों की वर्षा की थी। तब जाकर उनका काम पूरा हुआ और वह खेल खेल में हुआ।"

गरुड़-"आप मानसिक दृष्टि से ऐसा कह रहे हैं और मैंने तो स्थूल रूप में राम को लड़ते हुए पाया। मेघनाद ने जब उन्हें नाग फाँस में फंसा लिया था तब मैं उनके छुड़ाने के लिये रण भूमि में गया था। मैंने लड़ाई को अपनी आंखों से देखा था। क्या यह झूठ है?"

भुशंडी—"नहीं, यह सच है। जो तुमने देखा वह सच्चा दृश्य है। पहिले मन की मानसिक रचना होती है। तब वह स्थूल रूप धारण करती है।

मनमें पहले ऊपजे, तब प्रगटे स्थूल।
इस स्थूल व्यवहार में, नाना फल और फूल॥

राम दशरथ के घर में पैदा हुए यह स्थूल है! राम ब्रह्म हैं। यह सूक्ष्म है। राम के अन्दर सत, रज, तम और मन की वृत्तियाँ हैं। उनको बस में रक्खा यह सूक्ष्म है। राम ने रजो-गुणी रावण को मारा यह स्थूल है।

रामायण सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही है।"

गरुड़—"अब द्वापर का धर्म मूर्ति पूजा बताइये।"

भुशुण्डी—"सतयुग गया। त्रेता गया। ध्यान गया, यज्ञ गया। द्वापर युग आगया और उसके साथ मूर्ति पूजा आगई। उसने ध्यान और यज्ञ की जगह ले ली। बुद्धि तो बढ़ी और बुद्धि ने प्रकृति का चित्र खींचना और चित्र खींच खींच कर ध्यान दिलाना आरम्भ किया। शब्द और वाणी की धुनि को अक्षर का रूप बनाया जायगा। पत्र लिखा जायगा और मन्तव्य का चित्र इस पत्र में खींचा जायगा। वह पढ़ने वाले को लिखने वाले के अभिप्राय का ध्यान दिलायगा। इस प्रकार ध्यान की

त्रुटि की पूर्त्ति कराई जायगी। बुद्धिमान मनुष्य अक्षरों की मूर्त्ति में ईश्वर का नाम रूप बना कर 'ओ३म्' 'ओ३म्' लिख पढ़कर ध्यान जमायेंगे। कांसे और पीतल, पत्थर और मिट्टी की मूर्त्ति बना बना कर पूजेंगे और ईश्वर उसी से प्रसन्न होगा। प्रेम ज्ञान के मन में आते ही उन्हें ध्यान के पूरा करने का अवसर मिलेगा।

द्वापर में सबके चित्र बनेंगे। कल, कला मशीन, बुद्धि द्वारा बनेंगे और शरीर, मन और बुद्धि तक के काम उनसे लिये जायेंगे। और विश्वास और करतब के अनुसार उनके फल मिलेंगे। विश्वासम् फल दायकम्।

कृष्ण, प्रेम की झलकती मूर्त्ति और बुद्ध, ज्ञान की चमकती दमकती मूर्त्ति बनकर आयेंगे। यह भी राम ही के रूप होंगे। मूर्त्ति मान पूजा होने लगेगी और संसार मूर्त्तियों से भर जायगा। ज्ञान की मूर्त्ति पुस्तक, ध्यान की मूर्त्ति युक्ति के ग्रन्थ होंगे और इन्हीं से काम निकलेगा। बुद्धि युक्ति की मूर्त्ति पाताल में जायेंगी, आकाश में चढ़ेंगी, अन्तरिक्ष में दौड़ेंगी। पृथ्वी, वायु जल, अग्नि, आकाश की नाप तोल मूर्त्तियों से होगी और यह उसी की सहायता से सब कुछ ध्यान की पूर्त्ति की सामग्री इकट्ठा कर लेगी।

यह द्वापर युग का धर्म होगा, जिसमें राम ही कृष्ण और बुद्धि के रूप में प्रगट होकर मूर्त्ति द्वारा अधिकारी जीवों को ध्यान दिला कर उनके मनोरथ को सिद्ध करायेंगे।

द्वापर के पीछे कलियुग आयेगा। यह महा विकराल समय होगा। मनुष्य मनुष्य को धर धर के खायेगा। चाहे मनुष्य मनुष्य का मांस न खाये! सम्भव तो यह भी है लेकिन स्वार्थ बहुत बढ़ जायगा। द्रव्य की सामिग्री इकट्ठा करके थोड़े से मनुष्य बहुतों को अपने वशीभूत और आधीन बना कर उनका

गला घोटेंगे। कमाई तो यह करेंगे और थोड़े मनुष्य उनकी कमाई को हड़प कर जाँयेंगे। यह मनुष्य गिन्ती के होंगे। और उनकी शक्ति, बल और पराक्रम सबका सब उनके धन की गिन्ती से होगा। कोई लखपती और करोड़ पती होगा। कोई अरब पती और खरब पती होगा। यह औरों को लूटेंगे, दुखी करेंगे और अपनी बारी पर आप भी बहुत दुखी होंगे और शान्ति और आनन्द दुर्लभ होगा।

राम की चलाई हुई त्रेता की वर्ण मर्यादा का कोई सत्कार न करेगा। कृष्ण की चलाई हुई द्वापर की जाति मर्यादा भी नष्ट भ्रष्ट होगी। 'कलि' संस्कृत में गिनती को कहते हैं। जिनके यहां धन की सामिग्री की गिनती विशेष होगी। उन्हीं का आदर सम्मान होगा। धन के लालच में राजे, महाराजे, ब्राह्मण, वैश्य, धनाढ्य, व्याधों और मांस चमड़े वालों की सन्तान के साथ अपनी सन्तति का ब्याह सम्बन्ध करेंगे। वर्ण और जाति की मर्यादा का अभाव हो जायगा। कोई यह न पूछेगा कि गुण कर्म स्वभाव में संस्कार रहते हैं। वर्ण और जाति धन की गिनती के अनुमान से बनेंगी और उनमें निहित रहेंगी। सारा जग वर्ण संस्कार हो जायगा।

इन बातों का परिणाम दुख होगा। पृथ्वी दुखों से भर जायेगी। उस समय का धर्म नाम होगा और नाम ही ध्यान की पूर्ति करता कराता हुआ प्राणियों को सत का जीवन प्रदान करेगा। लेकिन स्वार्थ बस होकर सब लोग इस नाम को भी प्राप्त न कर सकेंगे। यह केवल किसी किसी को मिलेगा। फिर भी कलियुग का धर्म नाम ही रहेगा और नाम ही कहलायेगा।

दसवाँ समुल्लास

शंका समाधान

गरुड़—"भगवन ! आपने नाम की महिमा तो बताई कि यह कलियुग का धर्म है। लेकिन नाम है क्या ? और उसकी प्राप्ति का यत्न और साधन क्या है ? उसके विषय में कुछ नहीं कहा।"

भुशुण्डी—"यह सच है। ऐ गरुड़। तुम त्रेतावी जीव हो। कलियुगी जीव नहीं हो। तुम्हारा धर्म तो यज्ञ है। नाम कलयुगी जीवों के उद्धार के निमित्त है। तुम यज्ञ पूजा करो और ध्यान की पूर्ति इस बुद्धि से करके अपना काम बनाओ।"

भुशुण्डी—"मैं क्षमा चाहता हूँ। आप कहते हैं मूर्ति पूजा द्वापर में होती है लेकिन सेतु बनाने के पश्चात् राम ने रामेश्वर का मन्दिर बनाया। क्या यह मूर्ति पूजा नहीं है ?"

भुशुण्डी—"तुमने आप राम की कथा के प्रसङ्ग में कहा था कि वह मन्दिर स्मार्त्त चिह्न के प्रकार का था कि इसी जगह राम ने यज्ञ किया था जैसे राजे महाराजे स्मार्त्त स्थम्भ या विजय स्थूल स्मार्त्तार्थ बना जाते हैं कि वह उनकी कीर्ति स्मरण और स्मृति कराता रहे।"

गरुड़—"यह तो मैंने कहा था लेकिन जब आपने कहा कि मूर्ति पूजा द्वापर का धर्म है तब मुझे भ्रम हुआ। चाहे स्मार्त्त-चिह्न हो, स्मरणार्थ कोई स्थान बनाया जाये, जहाँ मनुष्य श्रद्धा भाव से हार्दिक सन्मान और सत्कार करते हैं वह मूर्ति ही है। मूर्ति शब्द संस्कृति धात मूर्च्छ (अशुद्ध होने) से बना है। जिस में सुध न हो, जो ठोस हो, स्थूल हो, शरीर हो, चित्र हो उसे मूर्ति कहते हैं और जहां तक मेरा विचार

काम करता है वह चाहे सतयुग में न रही हो लेकिन त्रेता युग में भी उसका प्रचार था। यज्ञ की वेदी और अग्निकुण्ड को भी मैं मूर्त्ति ही मानता हूँ और उसके होने का पता राम अवतार से पहिले भी लगता है। राम शिवजी के उपासक भक्त थे, और शिव के लिंग और अर्घ की पूजा किया करते थे। माना लिंग और अर्घ चिह्न मात्र सही लेकिन यह चिह्न भी तो एक प्रकार की मूर्त्ति ही है जो इष्ट के स्मरणार्थ स्थापना की जाती है।"

भुशुंडी—"गरुड़ जी आप तो बाल की खाल निकालने और बिंदी की चिंदी करने लगगये। अच्छा है कि यह आप ऐसी बातें कहते हैं। यहाँ ऐसा समझ लीजिये कि त्रेता में चिन्ह और स्मार्त्त कारण बनाया। वह था भी तो बहुत सूक्ष्म, और सूक्ष्म भाव के साथ था। उसका स्थूल रूप द्वापर में कृष्ण और बुद्ध के समय प्रगट होगा। जब मनुष्य उसका चित्र बनाने, उसमें देह धारियों के आकार कान नाक आंख पाँव गाढ़ने और जोड़ने का प्रबन्ध करने लगेंगे। इसके मान लेने से कोई हानि नहीं होती, क्यों कि यज्ञ जो त्रेता का धर्म है उसके कारण बीज के पड़ने का संस्कार संभावित नृसिंह अवतार से आरम्भ हुआ होगा।"

गरुड़—"मेरी शंका का समाधान होगया। अब इस विषय में मैं आप का अधिक समय नहीं लेना चाहता। अब आप नाम के विषयमें जो कुछ समझाना चाहतेहों मुझे समझाइये।"

ग्यारहवां समुल्लास

नाम

भुशुंडी—"ऐ गरुड़! तुम नाम का साधारण अर्थ जानते हो। सब इसे जानते हैं। यह जगत नाम और रूप ही है।

जहां रूप है वहां नाम भी है। जहां नाम है वहाँ रूप है। बिना रूप के नाम नहीं होता और बिना नाम के रूप नहीं होता।

नाम रूप संसार है, जगत् नाम और रूप।
रूप नाम दो साथ हैं, महिमा अगम अनूप॥

नाम शब्द संस्कृत धातु यग्म (बुलाने और पुकारने) से निकला है। इसका अर्थ है संभव, निश्चय, स्मरण, वाक्यवत, आश्चर्य आदि। जिससे किसी को बुलाया जाय, पुकारा जाय, सम्बोधन किया जाय वह नाम है।

नाम का अभिमानी जीव होता है। नाम लेने या नाम के पुकारे जाने से नाम वाला प्राणी सचेत होता है। नाम के सुनने ही उसके कान खड़े हो जाते हैं। सुरत जागती है और मनुष्य चौकन्ना हो जाता है।

यह इतनी साधारण बात है जिसे साधारण बुद्धि का मनुष्य भी समझ लेता और समझ सकता है। नाम की महिमा कभी कभी रूप से भी अधिक समझी जाती है। न नाम सुना और न नाम को जाना। बिना नाम के जाने सुने हुये रूप को देख भी लिया। सम्भव है आश्चर्य हो जाय लेकिन उससे लाभ क्या हुआ? कुछ भी नहीं। रूप नहीं देखा केवल नाम को जाना सुना तो उससे प्रीति और प्रीति का लाभ होजाता है।"

गरुड़—'नाम मिथ्या है, कल्पित है, मानसिक और मन मानी बात है। रूप से वह अधिक महिमा वाला कभी नहीं हो सकता।"

भुशुण्डी-"कल्पित और मिथ्या, मानसिक और मन माना हुआ तो रूप भी है। यह संसार ही कल्पित है और इसलिये

नाम रूप भी संसारी होने के कारण कल्पित ही होंगे। बात जो कही जा रही है वह व्यवहारिक दृष्टि से है। तीन तरह की कल्पना होती है—व्यवहार, प्रतिभास और परमार्थ। व्यवहार संसारी बर्ताव हैं, प्रतिभास विचार और ज्ञान है और परमार्थ आदर्श और इष्ट है। जहाँ जिस स्थल पर रहो उसी पर बातचीत हो तब तो उसका कुछ परिणाम होगा और गपलचौथ करोगे तो वितंडा वाद हो जायगा और वह निरर्थक सिद्ध होगा।"

गरुड़--"मैं समझ गया। मैं राम के दर्शन को मुख्य समझता था। इसलिये नाम की तरफ मेरा ध्यान नहीं गया हुआ था। अब आपके कथनानुसार मैंने जाना कि नाम की महिमा बड़ी है।"

भुशुण्डी—"मुख्यता तो राम के दर्शन ही की है और दर्शन रूप ही का होता है। साक्षात्कार भी इसीके आश्रित है। लेकिन जो नाम का आसरा नहीं लेते या उसका सहारा लेकर नहीं जाते तो रूप का दर्शन फल दायक नहीं होता। नाम रूप ही के आधार पर रहता है।"

गरुड़-"जब नाम रूप के आधार पर है तो फिर रूप क्यों फल दायक न होगा?"

भुशुण्डी-"इसलिये कि उसने यदि सम्भावित रूप को देख भी लिया और नाम नहीं जाना तो उसका ज्ञान न होगा। किसी के हाथ हीरा लग गया। उसने हीरा का नाम नहीं सुना था और न उसका गुण जानता था। उसने उसे चमकते हुए कांच का टुकड़ा प्रतीत किया और उसकी बहुमूल्यता को नहीं समझा। लेकिन यदि किसी ने बता दिया होता कि यह हीरा है तो हीरे का नाम उसकी विचार शक्ति का उत्तेजक होता और वह उसे पाकर धनी हो जाता। हीरा पाने से उसकी निर्धनता नहीं गई।"

गरुड़—"आपने नाम की बहुत बड़ी महिमा बताई। इस का लाभ भी बताइये।"

भुशुण्डी—"भाव कुभाव अनख आलस हूं।
नाम कहत मङ्गल दिशि दश हूं॥

चाहे यह नाम भाव से लिया जाय चाहे कुभाव से! चाहे क्रोध और आलस्य से लिया जाय! इसके लेने से दसों दिशाओं में मंगल की वर्षा होने लगती है और उसका प्रभाव मण्डलाकार हो जाता है।

आप आज्ञा करते हैं कि मैं नाम की महिमा का वर्णन करूँ। मेरी क्या सामर्थ्य है! राम भी नाम की महिमा कहना चाहें तो वह भी नहीं कह सकते।

राम से अधिक नाम प्रभुताई।
राम न सकहिं नाम गुण गाई॥

अर्थात् नाम की प्रभुताई राम से भी अधिक हैं। राम में भी यह शक्ति नहीं है कि नाम के गुण प्रभाव को कह सकें।

राम एक तापस त्रिय तारी।
नाम कोटि खल कुटिल सुधारी॥

राम ने तारा भी तो किसे! एक तपस्वी स्त्री शबरी को और नाम करोड़ों बुरे और पापी मनुष्यों को तार देता है, तारता रहता है और तारता रहेगा।"

अगुण सगुण बिच नाम सुसाखी।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी॥

निर्गुण और सगुण के बीच में नाम अच्छे साखी (साक्षी का काम देता है और यह चालाक दुभाषी (दो भाषाओं) का बोलने वाला दोनों को प्रकट करके समझा देता और दिखा देता है।

व्यापक एकु ब्रह्म अविनासी।
सत चेतन आनन्द घन रासी॥
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी।
सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपण नाम यत्न ते।
सोऊ प्रगटत जिमि मोल रतन ते॥

अविनाशी ब्रह्म एक है (और चराचर जगत् में) व्यापक है। (कहा जाता है कि) वह सत चित है और आनन्द घन भन्डार है। वह अविकारी (दोष रहित) ब्रह्म सबके हृदय में विराजमान हैं। लेकिन उसके होते हुये और उसके सबके हृदय में रहते हुये भी सब जग के जीव दुखी रहते हैं। यह नाम का प्रताप है कि नाम के निरूपण और नाम के यत्न कर लेने से वह प्रभु आप प्रकट हो जाते हैं और सबको सुख प्राप्त हो जाता है।"

गरुड़—"आपने बहुत कहा। विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। यह नाम दुभाषी, साक्षी, सगुण और निर्गुण ब्रह्म में कैसे है?"

भुशुंडी—"निर्गुण गुण रहित और आधार मात्र हैं। सगुण गुण संयुक्त और धार संयुक्त है। निर्गुण की धार इस सगुण में उतरती है और वह इसी उतरने के कारण अवतार कहलाती है। निर्गुण सगुण का भण्डार है। धार आधार में से कैसे उतरती है?' इसके समझने के लिये तुम इस चित्र को देखो। इस धार के अन्तर्गत नाम रहता है। वह दोनों के बीच में रहकर दोनों को दिखाता और दोनों ही का साक्षात्कार कराता रहता है।

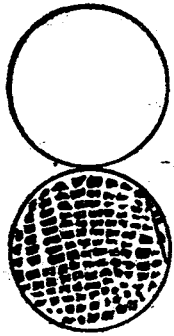

निर्गुण भण्डार
शुद्ध ब्रह्म

सगुण रूप सबल ब्रह्म

यह दो मण्डल हैं। एक निर्गुण और दूसरा सगुण। निर्गुण आधार, अधिष्ठान और कूटस्थवत् है। सगुण धार संयुक्त जगत् का उद्धारक और सुधारक है और इन दोनों के बीच में जो धार आती है वह दोनों को मिलाकर दोनों का ज्ञान देती है। यह नाम है और इसे दुभाष्या साक्षी इसलिये कहा गया कि यह साधक को दोनों का रूप दिखा कर उनका साक्षात्कार कराता है। इसका सहारा न लिया जाय तो फिर न सगुण का ज्ञान होता है और न निर्गुण का और ज्ञान के बिना अनुभव नहीं होता। इस अनुभव का उत्तेजक नाम है।

ऐ गरुड़! मैं तुम से क्या कहूँ!

एक दारु गति देखिये एकू। पावक सम युग ब्रह्म विवेकू॥
उभय अगम युग सुगम नाम ते। कहूं नाम बड़ ब्रह्म रामते॥

आग तो आग ही है। एक लकड़ी में रहकर साम्य अवस्था में है। दूसरी लकड़ी से प्रकट होकर और प्रज्वलित बनकर विशेष रूप में है। यह दोनों ही नाम से प्राप्त होती हैं और इनका प्राप्त होना नाम से सुगम होजाता है। मेरी समझ में तो

नाम निर्गुण ब्रह्म और सगुण राम दोनों से भी बढ़कर है और यह नाम सामान्य विशेष दोनों को प्राप्त करा देता है।"

गरुड़—"आश्चर्य है सतयुग का धर्म आपने ध्यान, त्रेता का यज्ञ, द्वापर का मूर्त्ति पूजा और कलियुग का नाम बताया है और नाम की महिमा इतनी सुनाई! क्या और युगों में नाम नहीं था या नहीं है?"

कागभुशुंडी—"होने को कौनसा पदार्थ कब नहीं रहता। जो कुछ मैंने कहा है सामान्य और विशेष रूप की दृष्टि से कहा है। नाम की विशेष महिमा कलियुग ही में है।

चहुँ युग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ।
कलि विशेष नहिं आन उपाऊ॥
सकल कामना हीन जे, राम भक्ति रस लीन।
राम सुप्रेम पियूष ह्रद, तिनहुँ किये मन मीन॥

नाम का प्रभाव तो चारों युग और चारों वेदों में प्रकट है। जिनको कोई इच्छा नहीं है और राम की भक्ति के रस में लीन हो रहे हैं वह भी राम के प्रेम अमृत के जल के मछली बने रहते हैं।"

बारहवां समुल्लास

नाम लेने की विधि

गरुड़—"अब नाम लेने की विधि बताइये जो आपकी समझ में सुगम और सरल है, जिसे युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सब ही कर सकते हैं और जिसमें प्रयत्न तो करना पड़ता है, लेकिन बहुत परिश्रम नहीं करना पड़ता।"

भुशुंडी—"ईश्वर का क्या पाना! इधर से हटाना, उधर को जमाना।

ईश्वर की क्या प्राप्ती ? इधर से कटे उधर से जुड़े।
ईश्वर का क्या मिलाप ? यहाँ से हटे वहाँ मिले॥

जो प्राप्त है वह हर समय प्राप्त है। जो अप्राप्त है वह अप्राप्त है।

यहाँ प्राप्त की प्राप्ति का जतन साधन है। अप्राप्त की प्राप्ति की विधि नहीं बताई जाती।

मुझ में है वह, तुममें है वह, वह यहाँ है वह वहां।
आँखों से हम देखते हैं, वह जहां का है तहाँ॥
गुप्त और प्रगट है लीला, उसकी वह है कौतुकी।
है वही छोटा बड़ा, कहते हैं उसको चौ मुखी॥
उसके हृदय में जो है अव-काश वह आकाश है।
वायु क्या है ? उसके साँसों, से निकलती सांस है॥
उसके जीवन में जो गर्मी, है वही तो आग है।
हैं उसी में तत्व, उसमें राग और अनुराग है॥
पाँव में है पृथवी, है सबका मूल आधार वह।
ईश करता धरता है, और जगत का करतार वह॥

वह ईश्वर एक देशी भी है और सर्व देशी भी है और उस के इस एक देशी और सर्व देशी होने का चित्र तुम आँख खोल लो तो जड़ और चेतन सब में दिखाई दे जायगा। सूरज को देखो वह एक देशी है और अपने सूरज मण्डल में वह सर्व देशी हो रहा है। तुम अपने पिन्ड की दृष्टि से एक देशी और सर्व देशी दोनों ही हो। ऐड़ी से लेकर चोटी तक तुम ही तो पिन्ड में व्यापक हो रहे हो। इसी प्रकार जिसे तुम ब्रह्म या ईश कहते हो वह भी एक देशी और सर्व देशी दोनों ही है। केवल समझ बूझ का भेद है।

आंख में रहते हो अपने, कान में रहते हो तुम।
बैठ कर बानी में बातें, रात दिन कहते हो तुम॥

पिन्ड में तुम जैसे व्यापक, ब्रह्म है ब्रह्मांड में।
पूर्ण है सम्पूर्ण है और, उसको देखो खंड में॥

इस बात को पहिले समझलो तो फिर मैं आगे बढ़ूं।"

गरुड़ – "मैंने समझ लिया।"

भुशुंडी—"तो फिर अब मुझ से गायत्री मन्त्र लो, जो सगुण उपासना की प्रथम सीढ़ी और सबसे नीची भूमिका है। ऋषी केवल बालकों को इसके द्वारा सगुण उपासना की शिक्षा देते हैं। उच्च श्रेणी की शिक्षा अभी बहुत ऊँची है और वह सगुण स्वरूप राम की भक्ति है। गायत्री मन्त्र सुनो:—

ओउम, भूर भुवः स्वः तत् सवितुर वरेण्यम् भर्गो देवस्य धी महि धियो योनः प्रचोदयात्:।

सरल और साधारण भाषा में उसको उल्था सुनो। गुरु कहता है—"ऐ शिष्य! ओ३म् कह कर भू मंडल, भुवः मंडल और स्वः मंडल तीनों मंडलों का विचार छोड़ कर उस मनोरंजन सावित्री (सूरज) को देखो। उस देवता के संस्कार को ग्रहण और धारण करो। और ऐसा हो जाय कि धीरे धीरे सावित्री (सूर्य) तुम्हारी बुद्धियों का प्रेरक बन जाय। (इसके पश्चात् तुम को उच्च श्रेणी की भक्ति की शिक्षा दी जायगी।)

ऐ गरुड़! सूरज का रूप सगुण सरूप है। प्रकाश निर्गुण नहीं है सगुण है। लोग नहीं समझते। इस गायत्री मन्त्र का उलटा अर्थ बताकर अपना उल्लू सिद्ध करते हैं।

यह सावित्री सूरज कहां है? तुम्हारे घट में है और जैसे तुम्हारे पिन्ड में सारी दिव्य शक्तियों के स्थान आंख, नाक, कान इत्यादि में हैं वैसे ही इस सावित्री देवता का मंडल भी तुम्हारे घट में है। उसे देखना उसका दर्शन करना उसका साक्षात्कार करना मन्तव्य है। कहा गया है:—

भानु रूप मालिक सुन भाई। नर देही में रहा छिपाई॥
घट में उसकी लीला देखा। घट में उसका किया परेखा॥
घट घट में वह रहा समाई। यह उस प्रभु की है प्रभुताई॥

ऐ गरुड़! क्या तुमने गायत्री के इष्ट देव सावित्री (सूर्य) की उपासना का मन्तव्य समझ लिया? तब मैं और आगे बढ़ कर तुमको और ऊँची शिक्षा दूँ।"

गरुड़-"हां भगवन्! मैंने उसे समझ लिया, देख लिया, निरख लिया, परख लिया। अब आप और ऊँची शिक्षा प्रदान कीजिये।"

भुशुंडी-"अब आगे समझना सुगम होगा। जिसने सावित्री का रहस्य समझ लिया वह आगे की शिक्षा बड़ी सुगमता और सरलता के साथ समझेगा, जैसे इस शरीर या मनुष्य के घट में सावित्री का स्थान है वैसे ही ओंकार व ब्रह्म का भी स्थान है। उसी स्थान का नाम त्रिकूट, त्रिकुटी या त्रिकोटी है और यह रचना की सूक्ष्म जड़ है। त्रिकूट, त्रिकुटी या त्रिकोटी उसे इसलिये कहते हैं कि इस ओ३म् में तीन अक्षर हैं। अ, उ, म, और इनके अन्तर्गत ब्रह्म के तीन पाद हैं।

अ सत उ रज, म तम है। अ जाग्रत उ स्वप्न, म सुषुप्त है॥
अ भू उ भुवः, म स्वः है। अ सृष्टि उ स्थिति, म लय है॥
अ पृथ्वी उ अन्तरिक्ष म दिव है। अ सत उ चित, म आनंद है॥

इत्यादि, इत्यादि, इत्यादि

यह तीन अवस्था हैं। तीन कूट, तीन शिखर और तीन चोटियां हैं और इन्हीं के मंडल को ओंकार ब्रह्म का मंडल कहते हैं। यह रामका मुख्य स्थान है। जो कोई रामसे मिलना चाहे उसे इस स्थान का पता गुरू से लेकर वहाँ राम का दर्शन करना चाहिये। राम सगुण हैं और ओंकार भी सगुण है। ओंकार सगुण न होता तो उसमें सत, रज, तम की त्रिपुटी या

त्रिकुटी न होती। जहां तक तीन पाद का विचार किया जाता या किया जासकता है वह सबका सब सगुण और सिया राम मय है और उसी की भक्ति से सद्गति मिलती है।

नाम को सुना तो नामी के स्थान का भी पता लो और नाम की सहायता लेकर नामी के स्थान में चढ़ जाओ। नाम उस ऊँचे कोठे पर चढ़ने की सीढ़ी है:—

नाम न जाने गांव का, बहका बहका जाय।
ठौर ठिकाना ना मिला, भटक भटक भटकाय॥
नामी को जाना नहीं, नाम लिया तो क्या।
नामी से परिचय नहीं, भरमा और भटका॥
मुख से नाम का जाप नहीं, वह अजाप है जाप।
अजपा जाप में चित लगे, तब छूटे त्रय ताप॥
माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं।
मनवा तो दस दिश फिरे, यह तो सुमरन नाहि॥
काठ की माला फेंक कर, मन की माला लै।
नामी का स्थान लख, नामी को चित दे॥
नामी को जाना नहीं, बिन जाने क्या नाम।
ऐसे जप तप नियम से, बने न एकौ काम॥
काठ की माला फेंक दे, इससे कछू न होय।
मन माला को फेरिये, तत क्षण फल मिले सोय॥
तन थिर मन थिर वचन थिर, थिरता आई मन।
थिरता ही से सब बने, सुमरन, ध्यान भजन॥
तीन बन्द लगाय कर, मुख से कुछ नहिं बोल।
बाहर के पट दे अभी, अन्तर के पट खोल॥

गरुड़—"नाम लेने की विधि बताइये।"

भुशुंडी—"जल्दी न करो। मैं धीरे धीरे तुमको नाम लेने का पूरा रहस्य बता रहा हूँ। जब अधिकारी मिलता है।

गुरु उससे कोई भेद नहीं छुपाता। सारे पदार्थ अधिकारी के निमित्त होते हैं। तुम आरत अधिकारी हो। तुमसे मैं कैसे तत्व को छिपा सकता हूँ और क्यों छिपाने लगा!

गूढ़हु तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहाँ पावहिं॥
आरत के मन रहे न चेतू। फिर फिर कहे आपनो हेतू॥

तेरहवां समुल्लास

नाम लेने की विधि लगातार

काग भुशुण्डी—"ऐ गरुड़! दो मंडल हैं और अखिल ब्रह्माण्ड दो ही मंडलों से बना हुआ है। एक गगन में आदर्श मंडल या मस्तिष्क मंडल या ब्रह्म मंडल है। दूसरा उसके नीचे हृदय मंडल या घट मंडल है। अधिकारी चेला हृदय मंडल या घट मंडल में रहता है और इसमें रह कर वह आदर्श की चाह में गगन मण्डल या ब्रह्म मंडल की तरफ चित लगाकर उसे प्राप्त करना चाहता है।

गगन मण्डल में गुरू है, घट में सेवक वास।
चेले में इच्छा हुई, गुरु संग करे निवास॥
गुरु नभ घट में दास गति, नभ घट एक जो होय।
गुरु चेला मिलि एक हों, समझे बिरला कोय॥

शिष्य गुरु के पास जाकर पूछता है—"ब्रह्म कहाँ है?" गुरु उत्तर देता है "तत्, त्वम्, असि" (तू वह है) तत का अर्थ है वह और त्वम का अर्थ है तू। असि 'है' को कहते हैं। इसी तत् त्वम को तत्व कहते हैं। तत्व का अर्थ तत् त्वम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। 'तू' और 'वह' यही दो बातें सार हैं। जिसने इन्हें समझ लिया, उसने सबको समझ लिया। जिसने इन्हें नहीं समझा उसका समझना और न समझना बराबर है।

एक पूछता है—"मेरा राम कहाँ है ?" दूसरा उत्तर देता है—"तेरा राम तुझमें है। अपने राम को अपने अन्तर में ढूंढ। तब वह तुझे मिलेगा। और जगह ढूंढ़ेगा तो उसे न पायेगा।

मँहदी में लाली बसे, चकमक में बसे आग।
पीस रगड़ तब प्रगट हों, जो चित में अनुराग॥
तुझमें है तेरा है वह, जीव जीव का जीव।
जीव जीव के जीव को, कहते राम और शिव॥

ऐ गरुड़ ! तुमने इसे समझ लिया तो मैं और आगे बढ़ूं।"

गरुड़—"यह तो मैंने समझ लिया कि राम या ब्रह्म व्यापक शक्ति हैं। जब सबमें हैं तो मुझमें भी हैं। इसमें मुझे सन्देह नहीं है। अब रहा यह कि दो मंडल हैं। एक में ब्रह्म रहता है और दूसरे में उस ब्रह्म का जिज्ञासू रहता है। सोचने समझने चेतने, सोचाने, समझाने चेताने का विषय हो जाता है। आप जैसे गुरु जब सौभाग्य से प्राप्त हों और वह चेतावनी दें तभी वह उलझी हुई गुत्थी सुलझ सकती है। इस उलझी गुत्थी के संभालने का और कोई उपाय नहीं है।"

काग भुशुंडी—"तुम समझ बूझ के समीप आगये। अब समझना इतना कठिन न होगा।

शिव नेत्र रुद्रनेत्र तीसरे तिल तक पिंड देश है। इसका ब्रह्माण्ड समझा जाता है। रुद्र नेत्र के ऊपर सहस्रार है जहाँ बिन्दी दी हुई है। इसी सहस्रार का नाम विराट है। इसके ऊपर त्रिकूट है जो मध्य मस्तिष्क में है। यहाँ ओंकार या अव्याकृत है। इसके ऊपर हिरण्यगर्भ है।

ब्रह्माण्ड से पिंड में करोड़ों नस नाड़ियों द्वारा धार उतर

कर पिंड को जीवित करती रहती है। इसी धार के अन्तरगत राम का नाम है जो उस धार का शब्द है।

जो कोई इस नाम का निरूपण या यत्न चाहे, उसे गुरु का खोज पहिले करना चाहिये। बिना गुरु के राम का नाम प्राप्त नहीं होता और सुनी सुनाई बात पर काम करने से बहकने, भ्रमने और भय खाने का भी डर रहता है। गुरु के चरणों की धूल का अञ्जन सबको अपनी आंखों में लगाना चाहिये, चाहे कोई कैसा ही बुद्धिमान, समझदार और सिद्ध ही क्यों न हो, तब इस राह में आये। इससे वह राम की महिमा को भी समझेगा, राम के नाम को प्राप्त करेगा और राम के चरित्र को जगत में देख सकेगा तथा उसके और उसके गुप्त रहस्य को जान जायगा।

यथा सुअंजन आंज दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखें शैल बन, भूतल भूर निदान॥

गुरु के चरण कमल की धूलि का अंजन साधक सिद्ध और सुजान तक पहिले अपनी आंखों में लगावें। फिर राम के चरित्र का दृश्य संसार में देखने लग जांय। बन पर्वत, सिन्ध, नद, नगर, ग्राम सबमें वह दिखाई दे जायगा। राम कभी गुप्त नहीं हैं। सब जगह उनकी लीला हो रही है और हर समय हुआ करती है। त्रेता युग रक्षा का युग कहलाता है। जो राम का दर्शन अपने घट में कर लेता है उसे भोग और योग दोनों प्राप्त होते हैं और साथ ही उसकी रक्षा भी होती है। हाँ! गुरु के चरणों की धूलि के अंजन लगाये बिना हिये के नेत्र नहीं खुलते। यह परम आवश्यक नियम है और जब नेत्र खुल गये तब!

सूझें राम चरित मणि मानिक।
गुप्त प्रगट जो जहाँ जिहि खानिक॥

राम के चरित्र के मणि मुक्ता, हीरे उसे दिखाई देने लग जाते हैं। चाहे ऊपर खुले सपाट स्थल में हों चाहे किसी खान में छिपे हो। दृढ़ निश्चय आ जाता है। अनुभव बढ़ जाता है। ज्ञान हो जाता है और राम के साथ उसका तदात्म सम्बन्ध आप ही आप हो जाता है।

बूंद है सागर के परगट राम हैं।
राम औंघट घाट और घट राम हैं॥
राम रावण संग में करते हैं युद्ध।
बीर हैं जोधा हैं और नट राम हैं॥
मनकी खटपट जब मिटे दर्शन मिले।
तट है राम और आप ही घट राम हैं॥
घट में तेरे राम बसते हैं सदा।
राम तनमें मनमें तिल पट राम हैं॥
राम इस संसार के हैं आत्मा।
राम शक्ति युक्ति जीवन राम हैं॥

राम नाम की विधि जानने की देर है। वह मिल गई फिर क्या है!

राम अपने सामने हैं हर घड़ी।
देखो जब है मूर्त्ती उनकी खड़ी॥
आँख खोली उनका दर्शन मिल गया।
बन्द करलो तब घट में दर्शन हुआ॥
भीतर और बाहर हैं देखो राम को।
पाओ मंगल चैन और विश्राम को॥
हम में तुम में सब में व्यापक राम हैं।
चैन दायक और सहायक राम हैं।
राम ही और नाम में मन सो गया।
राम प्रगट हो गये वह खो गया॥

चौदहवाँ समुल्लास

बालमीकि की कथा

गरुड़ – "अब नाम की विधि प्राप्त कर लेने की धुन है।"

भुशुंड—ठीक है। जल्दी नहीं। जो काम जल्दी होता है दृढ़ नहीं होता। जो धीरे धीरे होता है उसमें ठहराव होता है। पहिले तुम कथा सुनो। पीछे मैं आप नाम की विधि तुम्हें बताऊँगा।

सुनो! रतनाकर जाति का बहेलिया भील था। डाकू लुटेरा दया धर्म का नाम भी नहीं जानता था। इस का मन पत्थर के समान कड़ा था। पहाड़ और जंगल में सिंहवत फिरता था और कछारों का व्याघ्र बना हुआ था। जो कोई इक्का दुक्का पथिक मिलता उसे लूट लेता था, और जान से मार देता था। धनुर्विद्या में प्रवीण था। उसका बाण ठीक निशान पर बैठता था। क्या जाने उसने कितने प्राणियों को लूटा नोंचा खसोटा और मारा। रात दिन यही उसका उद्यम था।

एक दिन नारद मिले। भील ने कहा—"ठहरो। जो कुछ पास है रख दो और मरने के लिये तत्पर हो जाओ।" ऋषि के पास क्या था! बैन, तूँबा, मृगछाला और झोली रख दी। बोले-"इसे लेना है तो ले लो! लेकिन जान से क्यों मारोगे।" भील ने कहा—"तुम पुलिस को सूचित करोगे। राजकर्मचारी मेरे पीछे पड़ेंगे। इसलिये मार दूंगा। मुर्दे साक्षी देने नहीं आते।"

नारद—"अच्छा! मारते हो तो मुझे मार दो। मरने का मुझे भय नहीं है। मैं साधु हूँ। लोग मुझे नारद ऋषी कहते

हैं। लेकिन इतना तो बता ही दो कि तुम यह हत्या क्यों करते हो ?"

रत्नाकर-"यह मेरा उद्यन है। मां, बाप, बीबी, बाल बच्चे इसी लूट के धन से पलते हैं। यह काम मैं उन्हीं के पालन पोषण के निमित्त करता हूं।"

नारद-'ऐ भील ! कर्म का फल कर्म करने वाले को मिलता है। कोई हो ऋषि, मुनी, अवतार, बुरे भले ! किसी को इससे बचाव नहीं है। तुझे भी यह फल कभी न कभी मिलेगा। यह तू जानता है —अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृत कर्म शुभाशुभम् जा अपने सम्बन्धियों से पूछ आ कि वह कर्म के फल भोगने में तेरे साथी होंगे कि नहीं होंगे।"

रत्नाकर--"और तुम ? तुम अवसर पाकर भागना चाहते हो।"

नारद--"मैं भागने वाला आदमी नहीं हूं। यहाँ खड़ा रहूँगा।"

रत्नाकर भील ने देखा साधू निर्भय था। सच्चा प्रतीत होता था। अपने घर गया। सबसे पूछा-"हत्या करना महा पाप है। मैं हत्या करके तुमको पालता हूं। जब मुझे इसका फल मिलने लगेगा, तुम मेरे भागीदार और साथी बनोगे कि नहीं ?"

बाप ने पूछा-"आज यह ज्ञान तुझे किसने सिखाया ?"

रत्नाकर--"नारद ऋषी आये हैं। उन्हें मारना चाहता था। उन्होंने यह कहा-"अपने कुटुम्बियों से पहिले पूछ आ, वह तेरे कर्म फल के साथी होंगे या न होंगे।" मैं तुमसे पूछने आया हूँ।"

बाप---'माता पिता कर्म के साथी नहीं होंगे। केवल जन्म के साथी होते हैं। कर्म का फल करने वाले को भोगना पड़ता है।"

रत्नाकर के मन को ठेस लगी।

इसकी माँ ने कहा—"बेटे साधू बहकाने वाले होते हैं और फिर नारद तो नारद ही हैं। जहाँ जाते हैं उत्पात मचा देते हैं। बसा बसाया घर उनके उपदेश से उजड़ जाता है। शिव की स्त्री को ज्ञान दिया। वह प्रजापति के यज्ञ में जाकर जलमरी और शिव रंडुआ हुए। प्रह्लाद को राम नाम सिखाया। वह अपने बाप के मरण का कारण बना। उनके बाप ब्रह्मा उनसे दुखी हुए, श्राप दिया और नारद छिन मात्र से अधिक कहीं नहीं ठहरते। उनकी बात को न सुन। नारद महा उत्पाती हैं।

जहाँ उत्पात हो बैठे विठाये।
कहा करते हैं सब नारद मुनि आये॥

स्त्री बोली—"जा अपना काम कर। नारद को मार दे। उसके पास जो हो लूट ला। बाल बच्चों की जीविका चले।"

रत्नाकर मन में दुखी हुआ। सोचने लगाः—

कर्म का साथी एक नहीं, धन के साथी सब।
त्याग त्याग सम्बन्ध को, त्यागदे सबको अब॥
मानुष जन्म दुर्लभ है, जन्म न बारम्बार।
तरुवर से पत्ता झड़े, फिर नहि लागे डार॥
कूड़ा करतब नित किया, कूढ़े काम न छोड़।
जग से मुँह को मोड़कर, राम चरण चित जोड़॥

वह नारद अब तक खड़े हुए थे। चरणों में गिरा। दहाड़ें मार कर रोने लगा।

नारद—"क्या हुआ? क्या उत्तर मिला?"

रत्नाकर—"फल का साथी कोई नहीं। कमाई के सब साथी हैं।"

नारद—"फिर?"

रत्नाकर—"पापी हूं । अपराधी हूँ । महा पतित हूँ । आँखें खुल गई । उद्धार कैसे होगा ?

पाप किया पापी बना, पाप का रह व्यवहार ।
कैसे होगा जगत से, मेरा बेड़ा पार ॥

आप गुरु हो । रक्षा करो, मुझे बचाओ । चरणों में लगाओ । मेरा कहीं भी ठिकाना नहीं है ।

अब तो रक्षा कीजिये, गुरु देवों के देव ।
चरण कमल की ओट गहि, करूँ तुम्हारी सेव ।
पापी तरे तो क्या तरे, पाप ग्रसित है मन ।
उनके अघ निस्तार का, कोई नहीं जतन ॥"

नारद ने रोते हुए रत्नाकर को हाथ पकड़ कर उठाया । छाती से लगाया । "चिन्ता न करो । उद्धार पापियों ही का किया जाता है । रोटी भूके के लिये है । पानी प्यासे के निमित्त है । ज्ञान अज्ञानियों के लिये है । धन निर्धन ही के काम आता है । मुक्ति का अधिकार पाप से जकड़े हुए बन्धन वालों ही के लिए है ।

पहिले विषय कमाय कर, बांधी विष की पोट ।
सकल पाप पल में कटें, आए गुरु की ओट ॥
पापी के उद्धार को, राम धरें अवतार ।
राम की कृपा अपार से, सहज बने निस्तार ॥

ऐ रत्नाकर ! सबको त्याग कर राम की भक्ति कर । राम ब्रह्म हैं । ब्रह्म ही का दूसरा नाम राम है । ब्रह्म निर्गुण है । उसकी कभी भक्ति नहीं हो सकती । राम सगुण हैं । उन्हीं की भक्ति सुगम और सम्भव है । राम विशेष रूप में प्रगट होकर जीव को अपने चरण कमल का सहारा देते हैं ।

रत्नाकर—"राम कौन हैं, कहां हैं, कैसे मिलेंगे ?"

नारद—"मुझे देख मैं राम का दास हूं । राम तो व्यापक

और अव्यापक दोनों ही हैं। मेरी दृष्टि लो और मेरा संस्कार ग्रहण कर। राम तुझे तेरे घट में दर्शन देंगे। इसी त्रेता में राम का अवतार होने वाला है। तुझे उनका सन्देह चित्रकूट में दर्शन मिलेगा। जब तक तू मेरा भाव लेकर उनकी भक्ति में लग जा।

हरि से मति तू हेत कर, हरिजन से करि हेत।
माल मुल्क हरि देत हैं, हरिजन हरि को देत॥"

रत्नाकर—"मैं गवांर भील हूं। भक्ति भाव की मुझ में समझ कहां से आई।"

नारद—"मैं वह उपाय तुझे बताता हूं। राम के नाम का उल्टा जाप कर। नाम की धार तेरे घट में घनघोर धुन से गूंज रही है। इस नाम की धार को अपने अन्तर में पकड़ कर वैसे ही अपने मस्तिष्क के ब्रह्म लोक में चला जा, जैसे मछली पानी की धार पकड़ कर मेघ मण्डल में चढ़ जाती है। इस नाम में खिंचाव शक्ति अधिकता के साथ है। वह सुगम रीति से ऊपर की तरफ खींच ले आयेगी। तू ब्रह्म लोक में जाकर ब्रह्म से मिल जायगा। पहिले वहां भी तुझे ब्रह्म का राम सगुण रूप दर्शन देगा। बिना सगुण भक्ति निर्गुण भक्ति का कोई फल नहीं होता। भक्ति तो जब होगी सगुण ही की होगी निर्गुण तो निर्गुण और निर्गति है। इसकी भक्ति तो न आज तक किसी ने की, न किसी से हुई और न हो सकती है। बैठ जा और मैं तुझे राम नाम के उल्टे जाप की विधि समझाता हूं।

रत्नाकर बैठ गया। नारद भी उसके सम्मुख बैठे और इस प्रकार भील को शिक्षा और दीक्षा दी।

पृथ्वी मंडल त्यागो साधो, लटक चलो असमाना हो।
उलटी गङ्गा उलटी जमना, सरस्वति उलटी न्हाना हो॥
दृष्टि उलट पोत बन जाना, उलटो उड़ान उड़ाना हो।

उलट पुलट कर घटमें आना, तिलपट मध्य समाना हो॥
आँख, कान, मुख तीनों इन्द्री, बन्ध का बन्द लगाना हो।
इस विधि नाम की ध्वनि जब प्रगटे, सुरत मन उसमें लगाना हो॥
तीन त्रिवेनी मंजन करके, निर्मल मन कर जाना हो।
ब्रह्म लोक में बासा करना, राम का दर्शन पाना हो॥
अजपा जाप निरंतर करना, अजपा जाप कमाना हो।
दरस परस जब मिले ब्रह्म का, ब्रह्म में लय हो जाना हो॥

दीक्षा पाते ही रत्नाकर विस्माधित होने लगा। नारद प्रसन्न हुए। यह भील महा भाग्यवान है। लोग बरसों साधन करते हैं और कुछ नहीं होता। इसने पल छिनमें अपना काम बना लिया।

रत्नाकर की समाधि लग गई। शरीर का अध्यास गया। वह बेसुध होगया। नारद जी उसकी दशा देखकर चलते बने।

महीनों पीछे आये। रत्नाकर जैसे का तैसा बैठा हुआ मिला। दीमकों ने उसे मुर्दा समझ कर उसके देह के ऊपर अपने छत्ते बना लिये थे। नारद ने उसे हिलाया डुलाया। वह सचेत हुआ। इनके पांव पर सिर रख दिया।

गुरु गोबिन्द के रूप तुम! गुरु तुम सत करतार।
पापी जनको तार कर, कर दिया बेड़ा पार॥
घट समुद्र लखना पड़ा, उठती लहर अपार।
आप की कृपा अपार से, मेरा हुआ निस्तार॥

नारद बोले—"ऐ रत्नाकर! तू महा अधिकारी था। दीमकों ने तेरे शरीर में छत्ता बनाया था। संस्कृत में दीमक को बाल्मीकि कहतेहैं। अब तू संसारमें महा ऋषी और बाल्मीकि कहलायेगा। तू कवि होगा और आदि कवि की पदवी तेरी ही होगी।"

उस समय से यह कहावत चली आती है।

उलटा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥

नारद तो चले गये। बाल्मीकि ऋषि चित्रकूट के पहाड़ की तराई में आश्रम बनाकर रहने लगे।

एक दिन करुंज का जोड़ा वृक्ष की किसी डाली पर बैठा हुआ था। एक बहेलिये ने बान चलाया। नर गिर कर मर गया। उसकी मादर रोने लगी। बाल्मीकि को इसके रोने के राग में एक छन्द की धुन मिलगई। वही रत्नाकर बाल्मीकि के रूप में कोमल हृदय वाले बन गये थे। कुरंज के जोड़े का रोना सुनकर इनका मन भर आया और उसी धुन में राम की कथा को छन्द बद्ध किया। जब राम प्रगट हुए, चित्रकूट में आकर बाल्मीकि से मिले। यह प्रसंग तुम मुझे सुना चुके हो। अब मैं उसे क्या दुहराऊँ।

पन्द्रहवाँ समुल्लास

भुशुंडी का गरुड़ को राम नाम की दीक्षा देना

भुशुण्डी ने बाल्मीकि ऋषि की कहानी सुनाकर गरुड़ से पूछा—"तुम जानते हो कि शिवजी ने क्यों तुम्हारी शंका का समाधान नहीं किया था? और मेरे पास क्यों भेजा था?"

गरुड़—"आपके सत्संग के प्रभाव से यह रहस्य आप ही आप मुझ पर खुल गया। पूछने गछने की आवश्यकता नहीं रही। उसके कई कारण हैं:—

(१) खग समझे खग ही कर भाषा।

(२) भक्ति गुरू द्वारा प्राप्त होती है। (३) मन मता अहंकार को बढ़ाता है। गुरू मता से अहंकार मरा रहता है।

(४) गुरु अपने जैसा प्राणी हो अपने से भिन्न न हो। वन्दौं गुरू पद कंज कृपासिन्धु नर रूप हरि।

(५) गुरू जीता जागता पुरुष हो।

गुरू मांग ताँग के विचार से काम लेने वाला न हो। प्रमाण बद्ध गुरू से काम नहीं निकलता। जो अनुभव वाला है, राम को देखकर साक्षात्कार कर चुका है और अपना संस्कार दूसरे में प्रवेश कर सकता हो, वही रास्ते पर लगा सकता है। सोये हुए को सोया हुआ नहीं जगा सकता।

(७) गुरू मुक्त अवस्था में हो।

यह कारण है कि शिवजी ने मुझे उपदेश नहीं दिया। और आप की सेवा में सतसंग से लाभ उठाने को भेजा।"

काग भुशुंडी—"बहुत ठीक! तुम समझ गये। अब यह बताओ कि मैंने तुमको क्या उपदेश दिया और तुमने क्या समझा।"

गरुड़—"मैंने आपके सतसंग का लाभ बहुत कुछ उठाया। उपदेश तो मुझे अब तक प्राप्त न हुआ। लाभ यह हुए:—

(१) शंका का समाधान आप ही आप होगया।

(२) मैंने जान लिया कि राम व्यापक तत्व का नाम है। व्यापक अवस्था में वह सामान्य है जो उतना लाभदायक नहीं है। लाभ तो उसके विशेष रूप अवतार ही से होता है। सामान्य व्यापक अग्नि न किसी की सहकारी है न विरोधी है। न वह जलती है न जला सकती है। जलने जलाने का काम अग्नि के विशेष रूप चिनगारी से होता है।

(३) हम सगुण सरूप हैं। हमारा इष्ट देव सगुण सरूप हो।

(४) प्राकृतिक जगत् में हमको छोटा सरूप प्रदान हुआ है। इसे पाकर हम (ब्रह्-बड़ा होना, मन-सोचता हुआ, ब्रह्म)

बढ़ते और सोचते चलें। जितना हम बढ़ते हुये सोचते चलेंगे उतना ही सच्चे ब्रह्म वादी बनेंगे।

(५) छोटी वस्तु, छोटे पदार्थ, छोटी जगह और छोटे शरीर को तुम जितना चाहो सँवार सिंगार और सुन्दर बना सकते हो। भभ्भड़ से यह काम नहीं निकलता और ईश्वर का लाख लाख धन्यवाद है कि हम छोटे पर सबकी दृष्टि पड़ती है। ईश्वर दीन दयाल है।

(६) जो अपने आदर्श को प्राप्त करना चाहे वह सीधी राह न चले उलटी राह चले। हम ब्रह्म लोक से आये हैं। उलटे चलेंगे तो घर को पहुंचेंगे। वैसे घर पहुँचना कठिन होगा।
....."

भुशुण्डी—"तुमने अच्छा समझा है। अब केवल इतना बतादो कि उलटे मार्ग चलने से तुम्हारा क्या मन्तव्य है।"

गरुड़—'द्विजन्मे छोटे बच्चों को साधारण गायत्री, मन्त्र बताकर, ओ३म् भूर, भुवः स्वः के विचार से 'तत् सवितुर, वरेण्यम् सूरज सावित्री के स्थान पर मानसिक रीति से चढ़ा दिया जाता है और फिर उन्हें महः जनः तपः से उठाकर सत् लोक तक पहुंचा दिया जाता है। सन्ध्या के समय लोग उलटे जाप में कहते हैं।

ओ३म् भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ओ३म् जनः ओ३म् तपः ओ३म् सत्यम्।

ओ३म् सत्यम् ओ३म् तपः ओ३म् जनः ओ३म् महः ओ३म् स्वः ओ३म् भुवः ओ३म् भूः॥

कोई नहीं जपता। यह उलटा मार्ग है।"

भुशुण्डी—"वाह वाह! तुमने बहुत अच्छा समझा। लेकिन अभी तुमने एक मन की खटकने और खटकाने वाली

बात कही है कि मैंने तुम्हें उपदेश नहीं दिया। इस कहने का अभिप्राय क्या है ?"

गरुड़-"अबतक आप व्याख्यान देते रहे हो। उपदेश नहीं देते रहे हो। उप कहते हैं समीप को और देश नाम है जगह केन्द्र, स्थल और भूमिका। आपने मुझे अब तक देश में नहीं पहुंचाया न वहाँ लेजा कर बैठा दिया। मैं इसको उपदेश कहता हूँ। इसी प्रकार आपने अपने सतसंग में तो मुझे आसन देकर कृतार्थ कर दिया।" लेकिन उपासना नहीं कराई। उपासना का अर्थ है उप (समीप) आसन (बैठाना) आपने न सालोक उपासना कराई न सामीप उपासना कराई। न सारूप उपासना कराई और न सायुज उपासना कराई। उपदेश और उपासना से मेरा यह अभिप्राय है।"

भुशुंडी जी गरुड़ को एकान्त में लेगये। उन्हें उलटे नाम का अजपा जाप बताया था और भू लोक से लेकर सतलोक तक चढ़ने की विधि समझाई। एक एक स्थल में कैसे ठहरना और चित का ठहरना होता है, सब का सब समझा कर सच्ची युक्ति की दीक्षा दी और हर स्थल में उनकी वृत्तियों के टिकाव की अवस्था और दशा को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। और उन्हें विस्माधित अवस्था में छोड़कर सतसंग में आ बैठे।

सोलहवाँ समुल्लास

अन्तिम व्याख्यान

सतसंग हो चुका, साधन भी हो चुका। दो में से एक भी आदर्श नहीं हैं। साधन मात्र हैं। साधन सहायक होता है। उपाय है। मन्तव्य नहीं है। मन्तव्य कुछ और है। वह न कथन है न मनन है न श्रवण है। मनुष्य लकड़ी जलाता है।

चूल्हा फूँकता है रोटी पकाता है। यह सब साधन हैं। खाना पक गया उसने खालिया और सन्तुष्ट हो गया। खाना खा कर सन्तोष की दशा को प्राप्त कर लेना यह मन्तव्य और आदर्श और इष्ट है।

राम कथा को क्या सुना, राम न आये चित।
राम का आदर्श ना मिला, इससे क्या हुआ हित॥
घट के अंतर आरसी मुख देखा नहिं आय।
यह दर्शन तो तब मिले, जब घट की दुविधा जाय॥
मेरा राम मुझे, राम का मेला होय।
साधन सतसंग से लहे राम का दरशन कोय॥
माला फेरूँ हरि भजूं, मुख से कहूं न राम।
मेरा राम मोको भजे, तब पाऊं विश्राम॥

गरुड़ की समाधि टूटी। वह सतसंग में आये।
भुशुंडी ने पूछा—"उपदेश होगया।"
गरुड़ ने उत्तर दिया-"हां होगया।"
भुशुंडी - "क्या हुआ।"
गरुड़ बोले:—

शून्य शिखर पर घर किया, शून्य रह चित छाय।
शून्य शून्य जब शून्य है शून्य ही शून्य समाय॥
सगुण राम निर्गुण बने, निर्गुण अगम अलेख।
नाम रूप कुछ भी नहीं, आंख से लिया देख॥
बिन बस्ती का नगर है, बस्ती नगर के मध्य।
वहां न कोई रूप है, नहीं मुक्त नहीं बुद्ध॥
बूँद समाता सिन्धु में, सबको प्रगट होय।
सिन्धु समाना बूँद में, विरला देखे कोय॥
लाली में लाली मिली, लाली लाल समान।
लाली का कौतुक लहा, कौतुक अगम महान॥

लाली अपने लाल की, जित देखा तित लाल ॥
लाली देखन मैं गया, मैं भी हो गया लाल ॥
मैं तो सारा खोगया, जित देखूँ तित राम ।
राम राम को देखकर, राम में लिया विश्राम ॥
राम राम में राम है, राम राम में राम ।
राम राम में है सदा, राम राम का धाम ॥
देह नहीं इन्द्री नहीं, मन चित नहीं हंकार ।
कहते सुनते नहिं बने, शोभा अगम अपार ॥
राम रहे मैं ना रहा, राम में गया समाय ।
राम राम सिया राम में, आनन्द हर्ष को पाय ॥
संशय कोई ना रहा, निर संशय हुआ मन ।
अब नहिं मुझको चाहिए, ज्ञान न जोग जतन ॥

भुशुंडी—"ऐ गरुड़ ! बस करो । तुम्हारा काम होगया अब तुम जाओ । जब किसी प्राणी का काम किसी नक्षत्र मंडल में हो लेता है तो फिर उसे वहां रहने रखने की आवश्यकता नहीं रहती ।"

गरुड़ ने हाथ बांध कर नमस्कार किया और भुशुंडी के पांव पड़कर सब को राम राम कहते हुए सुमेरु पर्वत पर अपने लम्बे चौड़े पंख फैलाए, और विष्णु लोक का रास्ता लिया ।

"राधास्वामी दयाल की दया, राधास्वामी सहाय"

महारामायणम्

सातवां अनुभव खंड समाप्त